श्रीरघुनाथोविजयतेतराम् ।

प्रभाव्याख्यासहितः

श्री१००८ जगद्गुरुश्रीमदनन्तानन्दाचार्यप्रणीतः

# सिद्धान्तदीपकः

व्याख्याकारः—

श्री१०८ महान्त स्वामि श्रीरामशोभादासजी महाराज

वैष्णवाचार्यः ।

❀ सर्वेश्वरः श्रीरघुनाथो विजयतेतराम् ❀

आनन्दभाष्यकार श्री१६०८जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य प्रधान-
शिष्य श्री१०८ जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यप्रणीतः

# सिद्धान्तदीपकः

सच

श्रीरघुनाथमन्दिराध्यक्ष श्री१०८ महान्त स्वामि श्रीराम-
शोभादासजी महाराज वैष्णवाचार्य प्रणीतया
प्रभाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतः ।

प्रकाशकः—

व्यवस्थापक श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री

श्रीरघुनाथजी का मन्दिर श्रीरामानन्दपीठ
आबू (राजपूताना)।

-:※:-
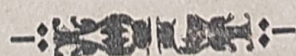
| प्रथमावृत्तिः | श्रीरामानन्दाब्द ६४६ | मूल्यम् |
| --- | --- | --- |
| १००० | फाल्गुन शुक्ल ५ सं० २००१ वि० | ॥) |

श्रीरघुनाथो विजयतेतराम् ।

# श्रीमदनन्तानन्दाचार्याष्टकम्

रचयिता—व्यवस्थापक श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री श्रीरघुनाथजी का मन्दिर श्रीरामानन्दपीठ आबू ( राजपूताना )

चिदानन्दे रामे सकलगुणधामे हितकरे
मनोहल्लावण्ये निखिलजनसेव्ये रघुवरे ।
जनानां भक्तानां सुखदसुशरण्ये च रतिमा-
ननन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ १ ॥

वरेण्ये कारुण्ये निगमगणमान्ये परतरे
धराधाराभारातिहरणसुदक्षे नृपवरे ।
सदा श्रीसाकेते विहरणसुशीले विमलधी-
रनन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम ॥ २ ॥

मनोज्ञे धर्मज्ञे विजितरणयज्ञे शरणदे
रसज्ञे भावज्ञे दलितरिपुयज्ञे सुखकरे ।
श्रुतिज्ञे सर्वज्ञे वरदफलयज्ञे सुरुचिमा-
ननन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ३ ॥

मतिज्ञे मर्मज्ञे कलितजनचित्ते विधिनुते
त्रिकालज्ञे यज्ञे कमलदलनेत्रे भवहरे ।
धनुर्विद्याऽभिज्ञे दशरथकुमारे रुचिरधी-
रनन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ४ ॥

मुनीन्द्रो योगीन्द्रो नृपतिकुलचन्द्रैर्नमसितः
कवीन्द्रो लोकेन्द्रो विबुधगणवन्द्यो बुधवरः ।
गुणीन्द्रो विप्रेन्द्रः श्रुतिनिकरकेन्द्रः सुकृतिमा-
ननन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ५ ॥

कृपापात्रं मात्रं हरिचरणसेवासुविषयं
जगज्ज्वालामालाविगलिततनुक्षीणमनसम् ।
अविद्याऽवद्या या तदविरहितं श्रेष्ठधृतिमा-
ननन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ६ ॥

विशिष्टाद्वैताख्यंश्रुतिकथितसिद्धान्तममलं
रमारामंब्रह्मादिशति निखिलैश्वर्यजलधिम् ।
करोति प्रशान्तिं हरति भवतापं वरसुधी-
रनन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ७ ॥

सुरेशं दीनेशं भजतु विभुरामं भयहरं
कुजाकान्तं शान्त विमलगुणयुक्तं श्रुतिनुतम् ।
सुभक्तानां नाथं त्रिभुवनपतिञ्चेतिनिगद-
न्ननन्तानन्दः श्रीसदनसुतशिष्यो ह्यवतु माम् ॥ ८ ॥

श्रीत्रिभुवनदासेन चार्बुदाचलवासिना ।
निर्मितमष्टकञ्चेदं विश्वद्वन्द्वविशान्तये ॥ ९ ॥

---
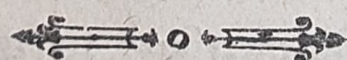
**निवेदन**

आचार्यचक्रचूड़ामणि श्री १००८ जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दजी महाराज यतिराज की जयन्ती कार्तिक की पूर्णिमा को अवश्य मनाइये । उनका पूजन करकेउनके स्तोत्र का पाठ और सिद्धान्तदीपक की कथा भी सुनिये तथा सुनाइये ।
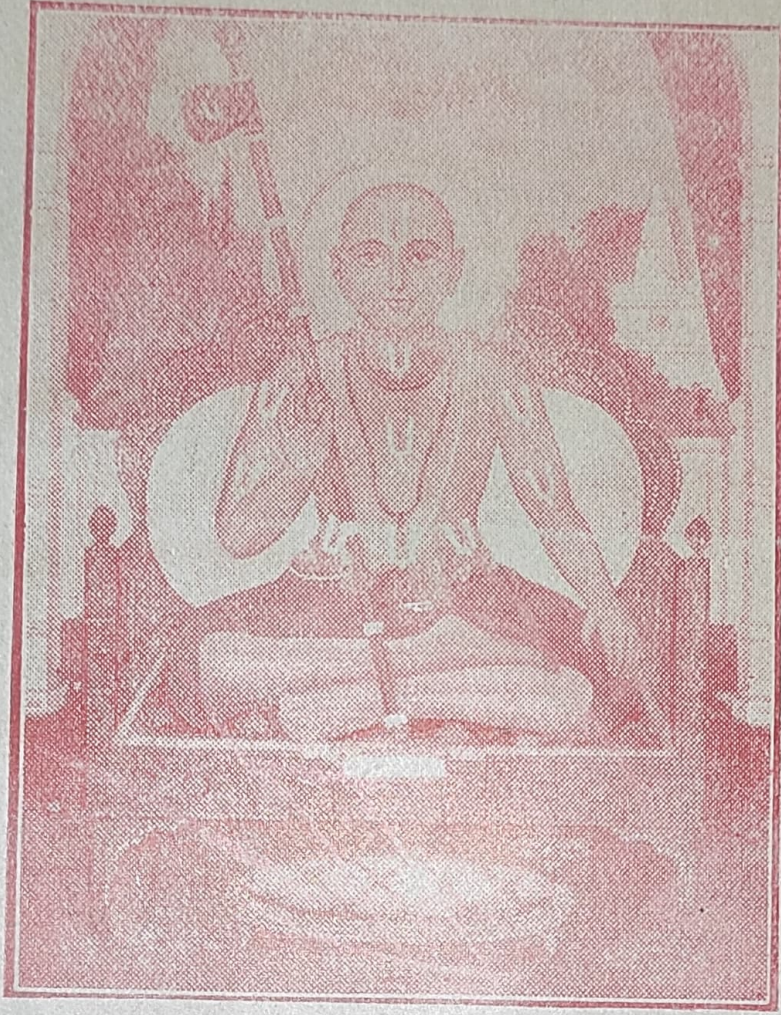
आनन्दभाष्यकार श्री ११०८ जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य-
प्रधानशिष्य श्री १००८ जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यजी
महाराज
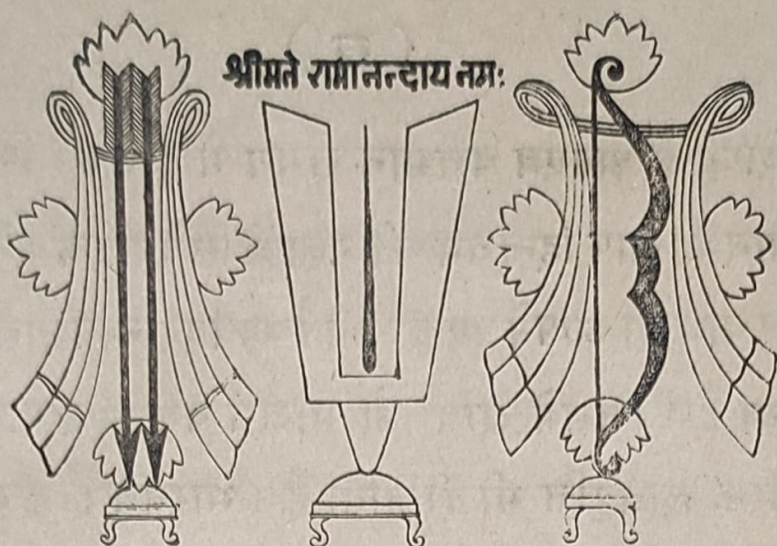
# भूमिका

राम अनादि सुआदि विच रामानँद यतिराज।
निजगुरु लौं गुरुमाल निज बन्दौं पर पद काज ॥

परमपूज्य श्रीपहाडीबाबाजी महाराज ( श्रीवृन्दावन )

महान्त स्वामी श्रीरामशोभादासजी महाराज वैष्णवाचार्य की आज्ञा से सर्वेश्वर श्रीरघुनाथजी के मन्दिर (श्रीरामानन्द-पीठ-आबू-राजपूताना ) के व्यवस्थापक विद्वद्वय श्रीत्रिभुवन-दासजी शास्त्री के द्वारा प्रकाशित हिन्दूधर्मोद्धारक आचार्य चक्र-वर्त्ती आनन्दभाष्यकार श्री १९०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-जी महाराज यतिराजराजेश्वर के प्रधान शिष्य श्री १००८ जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यजी महाराज यतिसार्वभौम द्वारा प्रणीत इस प्रभासहित सिद्धान्तदीपक नामक ग्रन्थरत्न को देखकर चित्तमें अत्यन्त आनन्द आरहा है। उक्त श्रीमहान्तजी महाराज श्रीरामानन्दसम्प्रदायालङ्कार श्रीसाकेतधामस्थ परमहंस परिब्राज काचार्य स्वामी श्रीदामोदरदासजी महाराज वैष्णवाचार्यजी के

प्रधान शिष्य हैं अतएव वर्त्तमान समय में उनके सिंहासन पर विराजमान हैं। आप हिन्दूधर्म की रक्षा के लिये सदैव कटिबद्ध रहते हैं। धर्मरक्षार्थं ही आपने एक श्रीवैष्णवदर्शनविद्यालय संस्थापित किया है। जिसमें छात्रों को भोजन वस्त्र और पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त छात्रवृत्ति भी दी जाती है। भारतवर्ष के राजपूताना के आदरणीय और परमपवित्र तीर्थ श्रीअर्बुदाचल में निर्मल श्रीनखीसरोवर के परमरम्यतटपर महर्षि श्रीमिलिन्दसूनुजी से प्राप्तकर भगवान् भाष्यकार महाप्रभु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज द्वारा संस्थापित उभयविभूति नायक हेयप्रत्यनीक अनवधिकातिशयक याणगुणाकरपरात्परब्रह्मस्वयंव्यक्तसर्वेश्वर भगवान् श्रीरघुनाथजी का आपने अत्यन्त विशाल और परमरमणीय रजतमारुतिजटित स्वर्णध्वज और श्रीचक्रविशिष्ट विशाल स्वर्णण कलश सेसुशोभित दो लाख रूपयों का व्यय करके १८ वर्ष में केवल मकराणे के सङ्गमरमर पत्थरों से ही निर्मित मन्दिर वनवाया है। जिसके अन्दर २५००० तोले चाँदी का काम है। श्रीरघुनाथजी के मन्दिर की शुभ प्रतिष्ठा के अवसर पर आप विष्णुयाग और अखिल भारतवर्षीय हिन्दूधर्मसम्मेलन कर रहे हैं। जिसमें अनेकों सम्प्रदायाचार्य विद्वान् सन्त महान्त और प्रसिद्ध हिन्दू नेता पधारे हुए हैं।

श्रीमहान्तजी महाराज आचार विचार तथा वर्णाश्रमधर्म मर्यादा के पूर्ण पक्षपाती हैं। आप इस सिद्धान्त को पूर्णतया मानते हैं कि "आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।" श्रीरघुनाथजी के

रसोइया पुजारी सदैव से ब्राह्मणकुल के श्रीरामानन्दीय वैष्णव ही होते आये हैं। आप भी उक्तमर्यादा का पूर्णतया पालन कर रहे हैं। अतएव अन्यान्य पवित्र मठों की भाँति यहाँपर भी उच्चवर्ण के हिन्दू कच्चा पक्का सभी प्रकार का प्रसाद ग्रहण करते हैं। सिद्धान्तदीपक के २२ वें श्लोक को स्वनिर्मित प्रभा व्याख्या में आपने सूत्रकार भगवान् श्रीवेदव्यासजी' आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी और श्रीमद्भागवत आदि के वचनों द्वारा अच्छी प्रकार से प्रतिपादित किया है कि भगवान् की सेवा करने वाले वैष्णव महानुभावों को वर्णाश्रम धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि वर्णाश्रमधर्म पालन भी भगवदाराधन है। भगवान् ने स्वयं ही कहा है कि—

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ( गीता )

मनुष्य अपने कर्म के द्वारा ईश्वर का आराधन करके सिद्धि को प्राप्त होता है।

जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यजी महाराज यतीन्द्र ने इस सिद्धान्तदीपक नामक छोटे से उपदेशग्रन्थ में श्रीसम्प्रदाय के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का संक्षेप रूप से निवेश कर दिया है। सिद्धान्त दीपक में संक्षिप्त रूप से कहे हुए श्रीसम्प्रदाय के उत्कृष्ट सिद्धान्तों को अच्छी प्रकार से प्रकाशित करने वाली उक्त श्रीमहन्तजी द्वारा विरचित प्रभाटीका अपने नाम की अन्वर्थता को सिद्ध करती है। श्रीमहन्तजी ने प्रभाटीका में अपने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अच्छी प्रकार से प्रतिपादन किया

है। विशिष्टाद्वैत शब्दार्थ, श्रीरामपरत्व श्रीराममन्त्रराजमहत्त्व और परम्परा का प्रमाण, वैष्णवधर्म की महत्ता भगवान्, आचार्य और भागवतों के आराधन का अपूर्वमहत्त्व, प्रपत्तितत्त्व (भगवान् की शरणागति) और वर्णाश्रमधर्म का पालन आदि प्रभाव्याख्योक्त विषय बहुत सुन्दर मननीय और पालनीय हैं। प्रभायुक्तसिद्धान्तदीपक के पुनः पुनः परिशीलन में लोक परलोक उभय का कल्याण समाया हुआ है।

आचार्यसार्वभौम श्री १००८ जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराज का चित्र और स्वनिर्मित श्रीमदनन्तानन्दाचार्याष्टक को इस ग्रन्थ में जोड़कर इस ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीरघुनाथजी के मन्दिर के व्यवस्थापक मेरे परमस्नेही श्रीमान्त्रिभुवनदासजी शास्त्री ने "सोने में सुगन्ध" की उक्ति को चरितार्थ किया है। मैं श्रीरघुनाथजी महाराज और पूज्यवैष्णव महानुभावों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस ग्रन्थरत्न के प्रचार को अधिकाधिक बढ़ावें।

फाल्गुन शुक्ल ५<br>
सं० २००१ वि०।

स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी शास्त्री<br>
न्यायरत्न वेदान्ततीर्थ तर्कवागीश<br>
न्यायवेदान्तकेसरी<br>
वंशीवट-खाकचौक<br>
श्रीवृन्दावन। यू० पी०।

महान्त स्वामी श्रीरामशोभादासजी महाराज वैष्णवाचार्य
श्रीरघुनाथजी का मन्दिर
श्रीरामानन्दपीठ-आबू ( राजपूताना )

सर्वेश्वरः श्रीरघुनाथो विजयतेतराम् ।

आनन्दभाष्यकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

आचार्यचक्रचूड़ामणि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-

प्रधानशिष्य श्री १००८ जगद्गुरुश्रीमदनन्तानन्दाचार्य प्रणीतः

# सिद्धान्तदीपकः ।

**साकेताधीश्वरः श्रीमज्जानकीवल्लभो विभुः ।**
**अव्याच्छाश्वतं रामो भक्ताभीष्टप्रदो हरिः ॥१॥**

## प्रभा टीका

करोमि रघुनाथं च रामानन्दं जगद्गुरुम् ।
स्वाचार्यं च नमस्कृत्य सिद्धान्तदीपकप्रभाम् ॥

पदच्छेदः-साकेताधीश्वरः श्रीमज्जानकीवल्लभः विभुः अव्यात् शाश्वतम् रामः भक्ताभीष्टप्रदः हरिः ।

अन्वयः--भक्ताभीष्टप्रदो हरिर्विभुः साकेताधीश्वरः श्रीमज्जानकीवल्लभो रामः शाश्वतमव्यात् ॥

शब्दार्थः-भक्ताभीष्टप्रदः = भक्तों को इष्ट पदार्थप्रदान करने वाले । हरिः = पापों के हरणकरने वाले । विभुः = व्यापक । साकेताधीश्वरः = श्रीसाकेतलोक के स्वामी । श्रीमज्जानकीवल्लभः = उत्कृष्ट शोभावाली श्रीजानकीजी के वल्लभ (प्रिय) । रामः = भगवान् श्रीरामचन्द्रजी । शाश्वतम् = निरन्तर । अव्यात् = रक्षा करें ।

अर्थः-भक्तजनों के मनोरथों को पूरा करनेवाले, सर्वपापों के हरण करनेवाले, सम्पूर्ण जड चेतन में व्याप्त, सर्व से पर श्रीसाकेतधाम के स्वामी और सर्व श्रेष्ठ शोभा वाली श्रीजानकी जो के प्रिय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

विशेषविवेचन-भक्ताभीष्टप्रदः-भक्तों के इष्ट पदार्थों के देने वाले भगवान् श्रीरघुनाथजी हैं इसमें नीचे लिखे प्रमाण हैं-

जगतः पितरौ रामो जानकीवेदविश्रुतौ।
सर्वेशौ सर्वगौ सम्यक् सर्वज्ञौ सर्वदौ शिवौ ॥
( वाल्मीकि संहिता )

जगत् के माता पिता वेदविख्यात श्रीसीतारामजी हैं। वे ही सर्व के ईश्वर हैं, सर्वव्यापक हैं, अच्छी प्रकार से सर्वपदार्थों के ज्ञाता हैं, सर्व कुछ देने वाले हैं और परम कल्याण रूप हैं।

जैसे राज्य का सब से बडा स्वामी राजा अपने सेवक को सर्व कुछ प्रदान कर सकता है। क्यों कि उसे किसी की भी आज्ञा नहीं लेनी पडती है। उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकाधिपों के स्वामी भगवान् श्रीरघुनाथजी भी अपने भक्तों को सर्वपदार्थ प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि उन्हें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है। क्यों कि उनके सङ्कल्पमात्र से सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति स्थिति और लय होते हैं। दूसरे वे सब के स्वामी हैं इसीलिये उन्हें किसी को कुछ भी देने में किसी कीभी अपेक्षा नहीं करनी पडती है।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में भी कहा है कि-

"धनदेन समस्त्यागे"

दान देने में भगवान् श्रीरामजी कुवेर के समान हैं।

श्रीसनत्कुमार संहिता में भी कहा हैं कि—

'भक्तप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ।'

भगमान् श्रीरामचन्द्रजी भक्तों के प्रिय हैं अथवा श्रीरामजी को भक्त प्रिय हैं, श्रीरामजी पद्म के समान विशाल नेत्र वाले और भक्तों को मनोवाञ्छित पदार्थप्रदान करनेवाले हैं।

ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी ने भी कहा है कि—

"अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तोनरा भुवि ॥"

(वाल्मीकि युद्ध० ११९ स० ३० )

हे भगवान् श्रीरामजी ! आपका दर्शन सफल है, आपकी स्तुति सफल है और आपकी भक्तिवाले मनुष्य पृथिवी पर सफल होंगे।

आनन्दभाष्यकार श्री १९०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज यतिराजराज ने भी कहा है कि—

'सूरिमान्यो वदान्यः' ( श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर )

सूरियों के ( नित्य जीवों के अथवा आचार्यों के ) मान्य और दाता हैं।

तथा—

"भक्ताशेषमनोभिवाञ्छितचतुर्वर्गप्रदस्त्वद्‍गुरुः मम"

( श्रीवैष्णव मता० भा० )

भक्तों के सम्पूर्ण मनोरथ, चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम

और मोक्ष को देने वाले कल्पतरु भगवान् श्रीरामको इत्यादि ।

श्रीमज्जानकीवल्लभः-इस पद में विद्वान् लोग तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनों प्रकार के समासों को स्वीकार करते हैं अतः इस पद के दो अर्थ होते हैं-श्रीमती जानकीजी के वल्लभ ( प्रिय ) और श्रीमती जानकीजी वल्लभा अर्थात् प्रिया हैं जिनके वे श्रीरघुनाथजी ॥ १ ॥

**प्रपन्नान्नां गतिं ह्येकां जनसन्तारणोत्सुकाम् ।**
**वात्सल्यरसपूर्णाङ्गीं रामकान्तां सदा भजे ॥२॥**

( वाल्मीकि युद्ध० ११६ स० ३० )

पदच्छेदः-प्रपन्नानाम् गतिम् हि एकाम् जनसन्तारणोत्सुकाम् वात्सल्यरसपूर्णाङ्गीम् रामकान्तां सदा भजे ।

अन्वयः-( अहम् ) प्रपन्नानामेकां गतिं जनसन्तारणोत्सुकां वात्सल्यरसपूर्णाङ्गीं रामकान्तां सदा भजे ।

शब्दार्थः-( अहम् = मैं ) । प्रपन्नानाम् = शरणागत जनों की एकाम् = अद्वितीय । गतिम् = उपाय । जनसन्तारणोत्सुकाम् = भक्तों को भली भाँति तारने के लिये उत्कण्ठा वाली । वात्सल्यरसपूर्णाङ्गीम् = वात्सल्य रस से ओतप्रोत अङ्ग वाली । हि = निश्चय करके । रामकान्तां = श्रीरामजी की प्रिया जगज्जननी श्रीजानकीजी को । भजे = भजता हूँ ।

अर्थः-मैं भगवत् शरणागत जनों की एकमात्र उपाय, भक्त जनों को तारने के लिये सदैव उत्कण्ठित और वात्सल्यरस से

परिपूर्ण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की कान्ता भगवती श्रीजानकीजी को निश्चय करके भजता हूँ।

विशेषविवेचन-प्रपन्नानां गतिं ह्येकाम्—भगवती श्रीजानकी जी ही शरणागत जनों की एकमात्र (अद्वितीय) गति अर्थात् उपाय हैं। इसमें प्रमाण हैं अनन्य रामभक्त श्रीशङ्करजी के वचन—

'अनिशं भगवान् रामो जगन्माता च जानकी।
भक्त्या त्वनन्यया देवि! ध्यातो भक्तं प्रपश्यति॥

(वाल्मीकि संहिता)

श्रीशङ्करजी कहते हैं कि हे पार्वतीजी! अनन्य भक्ति के द्वारा ध्यान किये हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और जगज्जननी श्रीजानकीजी अपने भक्तों को निरन्तर देखते रहते हैं। अर्थात् उस भक्त के बन्धन रूप कर्म से उत्पन्न शरीर के छूटने की अवधि को "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये" इस श्रुति के कथनानुसार देखते रहते हैं कि कब इसका बन्धन छूटे। कर्मबन्धन की अवधि स्वरूप पाञ्चभौतिक देह के छूटते ही अपने धाम को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान् भाष्यकार ने भी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में कहा है—

'नित्यं सा पुरुषकारभूता श्रीरनपायिनी।
अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता॥'

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से नित्य अभिन्न रहने वाली अर्थात् "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा" इस वचनानुसार

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से सदैव अभिन्न स्वरूप वे श्रीजी अर्थात् जगज्जननी श्रीजानकीजी पुरुषकार स्वरूप हैं अर्थात् मोक्ष पद दिलाने वाली में अन्य उपायों से रहित विज्ञानी महानुभाव उन्हीं श्रीजानकीजी की उपायता को करते हैं। अर्थात् श्रीरामजी से अभिन्न होने के कारण पुरुषकारस्वरूप श्रीजानकीजी का ही भगवान् श्रीरामजी के समान उपाय कहते हैं।

वात्सल्यरसपूर्णाङ्गीम्–'श्रीजानकीजी वात्सल्यरस से परिपूर्ण अङ्ग वाली हैं' इस विषय में प्रमाण निम्नलिखितरूप से जानना चाहिये–

माता च जानकी तत्र दिव्यरूपधराऽनघ!।
नितरां करुणामूर्त्तिराविर्भूता महेश्वरी॥

(वाल्मीकि संहिता)

हे अनघ! दिव्यरूप को धारण करने वाली दोष रहित अतिकरुणा की मूर्त्ति महेश्वरी जननी श्रीजानकीजी वहाँ पर प्रकट हुई।

जो श्रीजानकीजी अपने को नाना प्रकार की आपत्तियों को करने वाली राक्षसियों का भी बचाव करती हैं उनसे अधिक वात्सल्य और कहाँ मिलेगा? श्रीजानकीजी श्रीहनुमान्जी से भी कहला भेजती हैं कि–

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम!।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
लोकहिंसाविहाराणां रक्षसांकामरूपिणाम्।

कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥
( वाल्मीकि रामायण )

पापियों शुभों ( पुण्यकर्मशालियों ) और बधयोग्य सभी प्रकार के जीवों पर आर्य (श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ) को करुणा करनी चाहिये। क्योंकि संसार में ऐसा कोई जीव ही नहीं है जो अपराध न करे। लोकहिंसा हो जिनका विहार है उन कामरूपी राक्षसों के पाप करने पर भी आपको अशोभन अर्थात् इन राक्षसों का अहित न करना चाहिये।

भगवती श्रीजानकीजी की करुणा को लक्ष्य करके ही आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने कहा है कि—

"ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
च्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या।"
( श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर )

दिक्पालों से भोगने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य और निखिल आश्चर्यमय जगत् जिनके कृपा कटाक्ष के आश्रित हैं। शुभ अर्थात् कल्याण गुणों वाली और जो वात्सल्य की सीमा अर्थात् पराकाष्ठा हैं ... ... वे श्रीजानकीजी हमें सदा सम्पूर्ण भोगमोक्षादि सम्पत्तियाँ दें ॥ २ ॥

**मारुतिं वीरवज्राङ्गं भक्तरक्षणदीक्षितम्।**
**हनूमन्तं सदा वन्दे राममन्त्रप्रवर्त्तकम् ॥३॥**

पदच्छेदः—मारुतिम् वीरवज्राङ्गं सदा भक्तरक्षणदीक्षितम् राम-

मन्त्रप्रवर्त्तकं मारुतिं हनूमन्तं वन्दे ।

अन्वयः-( अहम् ) वीरवज्राङ्गं सदा भक्तरक्षणदीक्षितं राम-मन्त्र प्रवर्त्तकं मारुतिं हनूमन्तं वन्दे ।

शब्दार्थः-( अहम् मैं )। वीरवज्राङ्गम् = वीर और वज्र के समान शरीर वाले । सदा = सर्वदा । भक्तरक्षणदीक्षितम् = भक्तों की रक्षा में दीक्षित अर्थात् भक्तों की रक्षा का व्रत ग्रहण किये हुए। राममन्त्रप्रवर्त्तकम् = षडक्षरश्रीराम मन्त्रराज के प्रवर्त्तन करने वाले । मारुतिम् = वायुनन्दन । हनूमन्तम् = श्रीहनुमान्‌जी को । वन्दे = नमस्कार करता हूँ ।

अर्थः-मैं वीर और वज्रसदृश शरीर वाले सदैव भक्तों की रक्षा का व्रत धारण करने वाले और मन्त्रराज षडक्षर श्रीराम-मन्त्र के प्रवर्त्तन करने वाले पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जी को नमस्कार करता हूँ ।

विशेषविवेचन-भक्तरक्षणदीक्षितम्-'श्रीहनुमान्‌जी भगवान् श्रीरघुनाथजी के और अपने भक्तों की रक्षा में सदैव दीक्षित ( व्रत ग्रहण किये हुए ) रहते हैं' इसमें श्रीहनुमान्‌जी के अधोलिखित वचन प्रमाण हैं—

यो रामं संस्मरेन्नित्यं भक्त्या मनुपरायणः ।
तस्याहमिष्टसिद्ध्यर्थं हि दीक्षितोऽस्मि मुनीश्वराः ।।
वाञ्छितार्थं प्रदास्यामि भक्तानां राघवस्य तु ।
सर्वथा जागरूकोऽस्मि रामकार्यधुरन्धरः ।। (हनु० सं०)

श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि जो पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रजी

को भक्तिसे नित्य स्मरण करता है तथा श्रीराममन्त्रके जय करने में तत्पर रहता है, हे मुनीश्वरो ! मैं उस भक्तपुरुष की सर्वथा इष्ट सिद्धि के लिये सदैव दीक्षित हूँ अर्थात् दीक्षा (व्रत) लेकर बैठो हूँ। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के भक्तों के सकल मनोभिलषित पदार्थों को मैं देता हूँ। मैं उन भक्तों की रक्षा के लिये सब प्रकार से जागृत (सजग) रहता हूँ। और सदैव श्रीरामचन्द्रजी के काय भार को वहन करता रहता हूँ।

श्रीराममन्त्रप्रवर्त्तकम्- "श्रीहनुमानजी मन्त्रराज तारक श्रीराममन्त्र के प्रवर्त्तक हैं अर्थात् स्वातिरिक्त जीवों में श्रीराममन्त्र के सर्वप्रथम प्रवर्त्तन करने वाले श्रीहनुमानजी हैं" इस बात में निम्नलिखित पञ्चरात्र वचन प्रमाण हैं।

भगवान् रामचन्द्रो व परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतः।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम्॥
इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्॥
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनूमन्तं गुणाकरम्॥
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्माल्लेभे वशिष्टर्षिः क्रमादस्मादवातरत्॥

(वाल्मीकि संहिता)

'यह श्रीराममन्त्र पृथिवी पर कैसे आया ? इस प्रकार से ऋषियों के पूछने पर महर्षि श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं कि हे ऋषि-

यो ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही श्रुतिप्रतिपादित परब्रह्म हैं। वे दयालु तथा दीन चित्तवाले स्वदासजनों को नित्य शरणदेने वाले हैं। समस्त विश्व के ईश्वर उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने इस सृष्टि को उत्पन्न करके समस्त जीवों के हित करने की इच्छा से आदि शक्ति महादेवी जनकात्मजा भगवती श्रीसीतादेवीजी को तारकमन्त्रराज सुनाया। जगज्जननी श्रीजानकीजीने गुण रत्नों की खानि श्रीहनूमानजी को सुनाया अर्थात् तारकमन्त्रराज का उपदेश किया और श्रीहनूमानजी ने सुन्दर बुद्धि वालों में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी को श्रीराममन्त्र की दीक्षा दी। और सृष्टि कर्त्ता श्रीब्रह्माजी से श्रीवशिष्टजी ने षडक्षर श्रीराममन्त्रराज की दीक्षा पाई। इस प्रकार से यह श्रीतारक मन्त्रराज भूमि पर उतरा ॥ ३ ॥

**रक्षकं श्रुतिशास्त्राणां यमदुःखस्य भक्षकम् ।**
**तक्षकं म्लेच्छयूथानां रामानन्दं समाश्रये ॥४॥**

पदच्छेदः-रक्षकम् श्रुतिशास्त्राणाम् यमदुःखस्य भक्षकम् तक्षकम् म्लेच्छयूथानाम् रामानन्दं समाश्रये।

अन्वयः-( अहम् ) श्रुतिशास्त्राणां रक्षकं यमदुःखस्य भक्षकं म्लेच्छयूथानां तक्षक ( च ) रामानन्दं समाश्रये।

शब्दार्थः-( अहम् = मैं अनन्तानन्द ) श्रुतिशास्त्राणाम् = वेदों और शास्त्रों के। रक्षकम् = रक्षा करने वाले को। यमदुःखस्य = यमराज के दुःखों के। अर्थात् नरक के दुःखों के। भक्षकम् =

हरण करनेवाले। म्लेच्छयूथानाम् = यवनों के समूहों के। तक्ष-कम् = नाश करनेवाले तक्षक। रामानन्दम् = आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज यतिसार्वभौम को। समाश्रये = आश्रय करता हूँ।

अर्थः--वेद और शास्त्रों के संरक्षण करनेवाले, यमराज से होने वाले दुःखों के हरण करने वाले और म्लेच्छों के समूहों के नाश करने वाले जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ ॥ ४ ॥

## सीतानाथसमारम्भां श्रीबोधायनमध्यमाम्।
## अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥५॥

पदच्छेदः—सीतानाथसमारम्भाम् श्रीबोधायनमध्यमाम् अस्म-दाचार्यपर्यन्ताम् गुरुपरम्पराम् ( अहं ) वन्दे।

अन्वयः--सीतानाथसमारम्भां श्रीबोधायनमध्यमामस्मदाचा-र्यपर्यन्तां गुरुपरम्परामहं वन्दे।

शब्दार्थः--सीतानाथसमारम्भाम् = श्रीजानकीनाथजी जिसके प्रारम्भ में हैं ऐसी। श्रीबोधायनमध्यमाम् = बोधायनवृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज बोधायनजी जिसके मध्य में हैं ऐसी। अस्मदाचार्यपर्यन्ताम् = हमारे आचार्य आनन्दभाष्यकार जगद्-गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज यतिचक्रवर्तीजी पर्यन्तवाली।

पम्पराम् = गुरुओं की अर्थात् आचार्यों की परम्परा को (अहम् = मैं)। वन्दे = वन्दन करता हूँ।

अर्थः--श्रीजानकीनाथजी से प्रारम्भ हुई बोधायन जिनका दूसरा नाम है, परमहंस चक्रवर्ती श्रीशुकदेवाचार्यजी के शिष्य, वे बोधायनवृत्तिकार, जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज जिसके मध्यमें हैं और मेरे आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज जिसके अन्तमें हैं उस आचार्यपरम्परा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

**धर्ममार्गच्युता मूर्खा अज्ञानध्वान्तपीडिताः ।**
**प्राप्नुवन्त्वचिरान्मार्गं लब्ध्वा सिद्धान्तदीपकम् ॥६**

पदच्छेदः--धर्ममार्गच्युताः मूर्खाः अज्ञानध्वान्तपीड़िताः प्राप्नुवन्तु अचिरात् मार्गं लब्ध्वा सिद्धान्तदीपकम् ।

अन्वयः--अज्ञानध्वान्तपीडिता धर्ममार्गच्युता मूर्खा सिद्धान्तदीपकम् लब्ध्वाऽचिरान्मार्गं प्राप्नुवन्तु ।

शब्दार्थः--अज्ञानध्वान्तपीडिताः = अज्ञानरूपी अन्धकार से पीडित । धर्ममार्गच्युताः = धर्म के मार्ग से भ्रष्ट हुए । मूर्खाः = मूर्ख लोग । सिद्धान्तदीपकम् = सिद्धान्तों को प्रकाश करने वाले सिद्धान्तदीपकनामक ग्रन्थ को । लब्ध्वा = प्राप्त करके । अचिरात् = बहुत ही शीघ्र । मार्गम् = मार्ग को । प्राप्नुवन्तु = प्राप्त हों ।

अर्थः-अज्ञानरूपी अन्धकार से पीडित अतएव धर्ममार्ग से भ्रष्ट हुए मूर्ख लोग इस सिद्धान्तदीपक नामक ग्रन्थ को प्राप्त करके शीघ्र ही मार्ग को प्राप्त करें ॥ ३ ॥

**आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दजगद्गुरोः ।**
**सिद्धान्तो वैदिको मान्यो विशिष्टाद्वैतनामकः ।७।**

पदच्छेदः--आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दजगद्गुरोः सिद्धान्तः वैदिकः मान्यः विशिष्टाद्वैतनामकः ।।

अन्वयः-आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दजगद्गुरो विशिष्टाद्वैतनामको वैदिकः सिद्धान्तो मान्यः ।

शब्दार्थः-आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दजगद्गुरोः = आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचायजी का । विशिष्टाद्वैतनामकः = विशिष्टाद्वैतनामवाला । वदिकः = वेदद्वारा प्रतिपादित । सिद्धान्तः = सिद्धान्त । मान्यः = मानने लायक है ।

अर्थः-आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज का विशिष्टाद्वैतनामक वैदिक सिद्धान्त मानना चाहिये ।

विशेषविवेचन

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज का सिद्धान्त श्रीविशिष्टाद्वैत है यह बात उन्होंने स्वयं ही आनन्दभाष्य में लिखा है किः--

"एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामाञ्जस्यादुपपत्तिवलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य मीमांसाशास्त्रस्य विषयो न तु केवलाद्वैतम् ।" (आनन्दभाष्य १।१।१)

इस प्रकार सम्पूर्ण श्रुतियों स्मृतियों इतिहासों और पुराणों की संगति होने से तथा उपपत्ति ( युक्ति ) के बल से

इस मीमांसाशास्त्र का श्रीविशिष्टाद्वैत नामकसिद्धान्त ही विषय है। केवलाद्वैत नहीं है।

विशिष्टाद्वैतम्--विशिष्टाद्वैत का अर्थ है कार्य और कारण ब्रह्म की एकता।

सूक्ष्म अर्थात् नामरूप विभाग के अयोग्य जो चिद् (जीव) और अचित् (प्रकृति); उन दोनों से विशिष्ट अर्थात् सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म को कारणब्रह्म कहते हैं।

स्थूल अर्थात नाम और रूप के विभाग के योग्य जो चिद् (जीव) और अचित (प्रकृति); उन दोनों से विशिष्ट अर्थात् स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म को कार्यब्रह्म कहते हैं।

विशिष्ट--विशिष्ट शब्द का अर्थ है विशेषण से युक्त विशेष्यपदार्थ।

चित और अचित् अर्थात् जीव और प्रकृति ब्रह्मके अपृथक्सिद्ध (कभी न पृथक होने वाले) विशेषण हैं और ब्रह्म विशेष्य है।

चिदचिद्विशिष्ट--ब्रह्म हमेशा ही चित् और अचित् अर्थात जीव और प्रकृति रूप दोनों विशेषणों से युक्त ही रहता है इसलिये उसे चिदचिद्विशिष्ट कहते हैं।

कारणब्रह्म—प्रलयावस्था में चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म को कारण ब्रह्म अर्थात् सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कहते हैं। क्योंकि प्रलयावस्था के चित् और अचित सूक्ष्म अर्थात् नाम और रूप के विभाग के अयोग्य होते हैं।

कार्यब्रह्म—सृष्टि अवस्था में चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म को कार्य अर्थात् स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कहते हैं। क्योंकि सृष्टिदशा के जीव (चित) और प्रकृति (अचित) स्थूल अर्थात् नाम और रूप के विभाग के योग्य होते हैं।

अद्वैत—अद्वैत शब्द का अर्थ है अभेद।

विशिष्टब्रह्म—ब्रह्म सदैव विशिष्ट ही रहता है। निर्विशेष ब्रह्म प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता है।

विशिष्टाद्वैत—कार्य और कारण दोनों ही अवस्थाओं में एक चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म रहता है। इसलिये कार्यब्रह्म और कारण-ब्रह्म का अभेद माना जाता है। कार्य और कारण ब्रह्म का अभेद या सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट और स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का अभेद या विशिष्टाद्वैत तीनों का एक ही अर्थ है।

विशिष्टाद्वैत-शब्द का विग्रह इस प्रकार करना चाहिये। द्वयो-र्भावो द्विता द्विता एव इति द्वैतम्। न द्वैतमद्वैतम्। विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे। विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।

प्रथम विशिष्ट शब्द से कारण ब्रह्म अर्थात् सूक्ष्मचिदचिद्वि-शिष्ट ब्रह्म कहा जाता है। और द्वितीय विशिष्ट शब्द से कार्य ब्रह्म अर्थात् स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कहा जाता है। इन दोनों के अभेद अर्थात् एकता को ही विशिष्टाद्वैत कहते हैं ॥७॥

**शास्त्रश्रुतेश्च सत्सङ्गादात्मप्रबोधनादपि।**
**स्वभावदूषिता लोके न शुध्यन्ति कदाचन ॥८॥**

पदच्छेदः-शास्त्रश्रुतेः; च सत्सङ्गात आत्मप्रबोधनात् स्वभाव-दूषिताः लोके न शुन्ध्यन्ति कदाचन ।

अन्वयः-शास्त्रश्रुतेः सत्सङ्गादात्मप्रबोधनाच्चापि स्वभावदूषिता लोके कदाचन न शुन्ध्यन्ति ।

शब्दार्थः-शास्त्रश्रुतेः = शास्त्रों के श्रवण करने से । सत्सङ्गात = सत्सङ्गति करने से । च = और । आत्मप्रबोधनात = आत्मज्ञान से । अपि = भी । स्वभावदूषिताः = स्वभाव ( आदत ) से दुष्ट हुए लोग । लोके = इस लोक में । कदाचन = कभी । न = नहीं । शुन्ध्यन्ति = शुद्ध होते हैं ।

अर्थः-इस लोक में शास्त्रका श्रवण करने से, सत्सङ्ग से और आत्मज्ञान से भी स्वभाव से दुष्ट हुए लोग कभी नहीं शुद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

**प्रीतिर्नैसर्गिकी कार्या ह्युत्तमश्लोकवल्लभे ।**
**विषयासक्तजीवानां नानुरक्तिः कदाचन ॥९॥**

पदच्छेदः-प्रीतिः नैसर्गिकी कार्या हि उत्तमश्लोकवल्लभे विषयासक्तजीवानाम् न अनुरक्तिः कदाचन ।

अन्वयः-उत्तमश्लोकवल्लभे हि नैसर्गिकी प्रीतिः कार्या विषयासक्तजीवानां कदाचनानुरक्तिर्न कार्या ।

शब्दार्थः-उत्तमश्लोकवल्लभे = भगवान् श्रीरामजी में । हि = निश्चय करके । नैसर्गिकी = स्वाभाविकी प्रीतिः = प्रेम (अनुराग) कार्या = करना चाहिये । विषयासक्तजीवानाम् = विषय में आसक्त

जीवों को। कदाचन = कभी भी। अनुरक्तिः = प्रेम। न = नहीं।
(कार्या = करना चाहिये।)

अर्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में निश्चय करके स्वाभाविक अनुराग करना चाहिये। विषयी जीवों की प्रीति कभी भी न करनी चाहिये ॥ ९ ॥

**पूरयेदष्टगन्धेन सिञ्चयेत् पुष्पवारिणा ।**
**खलवदुग्रगन्धञ्च पलाण्डुर्नैव मुञ्चति ॥१०॥**

पदच्छेदः—पूरयेत् अष्टगन्धेन सिञ्चयेत् पुष्पवारिणा खलवद् उग्रगन्धम् च पलाण्डुः न एव मुञ्चति।

अन्वयः—अष्टगन्धेन पूरयेत् पुष्पवारिणा च सिञ्चयेत् (किन्तु) पलाण्डुः खलवदुग्रगन्धं नैव मुञ्चति।

शब्दार्थः—अष्टगन्धेन = अष्टगन्ध से। पूरयेत = पूर्त्ति करे। पुष्पवारिणा = पुष्प के जल से। सिञ्चयेत् = सींचे। (किन्तु = परन्तु) पलाण्डुः = प्याज। खलवत् = दुष्ट पुरुष के समान। उग्रगन्धम् = दुर्गन्ध को। न = नहीं। एव = ही। मुञ्चति = छोड़ती हैं।

अर्थः—प्याज को चाहे अष्टगन्ध की क्यारी में बोवे और फूलों के सुगन्धित जल से सींचे, तो भी वह अपनी दुर्गन्ध नहीं छोड़ती है। जैसे कि खल पुरुषों को कैसी भी विद्या पढ़ावें और कैसा भी सुख देवें परन्तु वे अपने दुष्टस्वभाव को नहीं छोड़ते हैं ॥ १० ॥

**लौकिकीनां हि वृत्तीनां दैहिकीनाञ्च सिद्धये।**
**उदासीनेन चित्तेनेतरेषामल्पसङ्गतिः ॥११॥**

पदच्छेदः—लौकिकानाम् हि वृत्तीनाम् दैहिकीनाम च सिद्धये उदासीनेन चित्तेन इतरेषाम् अल्पसङ्गतिः।

अन्वयः—लौकिकीनां दैहिकीनाञ्च वृत्तीनां सिद्धये उदासीनेन चित्तेनेतरेषामल्पसङ्गतिः (कार्या)।

शब्दार्थः—लौकिकीनाम = लोक की। दैहिकीनाम = देह की। च = और। वृत्तीनाम् = व्यवहारों की। सिद्धये = सिद्धि के लिये। उदासीनेन = तटस्थ। चित्तेन = चित्त से। इतरेषाम् = अन्यपुरुषों की। अल्पसङ्गति = थोड़ा संसर्ग। (कार्या = करनी चाहिये।)

अर्थः—लोक के और देह के व्यवहारों के निर्वाह के लिये लिये अन्यपुरुषों के (वैष्णवों के) साथ उदासीन मन से थोड़ा संसर्ग करना चाहिये॥ १२॥

**विषयातुरजीवानां कुर्वन्त्यात्मविशोधनम्।**
**स्वाध्यायव्रतसत्तीर्थदानयज्ञतपांसि हि ॥१२॥**

पदविच्छेदः—विषयातुरजीवानाम् कुर्वन्ति आत्मविशोधनम्। स्वाध्यायव्रतसत्तीर्थदानयज्ञतपांसि हि।

अन्वयः—स्वाध्यायव्रतसत्तीर्थदानयज्ञतपांसि विषयातुरजीवानामात्मविशोधनं कुर्वन्ति हि।

शब्दार्थः—स्वाध्यायव्रतसत्तीर्थदानयज्ञतपांसि = वेदाध्ययन, चा-

न्द्रायणादि व्रत श्रेष्ठ तीर्थ दान यज्ञ और तप इत्यादि साधन। विषयातुरजीवानाम् = विषयी जीवों के। आत्मविशोधनम् = आत्मशुद्धि को। कुर्वन्ति = करते हैं। हि निश्चय करके।

अर्थः-वेदाध्ययन, चान्द्रायणादि व्रत उत्तमतीर्थ दान यज्ञ और तप आदि साधन विषयों में फँसे हुए जीवों की आत्मशुद्धि को करते हैं ॥ १२ ॥

**किन्त्वात्मशोधने ह्येते न स्वतन्त्राः कदाचन।**
**भगवत्कृपया युक्ताः शक्ताः स्युरात्मशुद्धये ॥१३**

पदच्छेदः-किन्तु आत्मशोधने हि एते न स्वतन्त्राः कदाचन भगवत्कृपया युक्ताः शक्ताः स्युः आत्मशुद्धये।

अन्वयः-किन्त्वेत आत्मशोधने कदाचन स्वतन्त्रा न हि ( सन्ति )। भगवत्कृपया युक्ता आत्मशुद्धये शक्ताः स्युः।

शब्दार्थः-किन्तु = परन्तु। एते = वेदाध्ययनादिपदार्थ आत्मशोधने = आत्मा की शुद्धि करने में। कदाचन = कभीभी। स्वतन्त्राः = स्वतन्त्र अर्थात् अन्य की अपेक्षा से रहित। न = नहीं। हि = निश्चय करके। सन्ति = हैं। भगत्वकृपया = भगवान् की कृपा से। युक्ताः = युक्त। आत्मशुद्धये = आत्मा की शुद्धि के लिये। शक्ताः = समर्थ। स्युः = होते हैं।

अर्थः-परन्तु ये वेदाध्ययनादि पदार्थ आत्मा की शुद्धिकरने में स्वतन्त्र अर्थात अन्यनिरपेक्ष नहीं हैं। किन्तु ये सर्व पदार्थ भगत्वकृपा से युक्त होकर ही आत्मा की शुद्धि करने में समर्थ

होते हैं।

बिशेषबिवेचन

आत्मा की बास्तविक शुद्धि भगवत्प्राप्ति होने पर अपने वास्तविकरूप के पाने पर ही होती है। और वह भगवत्प्राप्ति तो केवल वेदाध्ययनादि से नहीं होती है किन्तु भगवान् के अनन्य अनुराग से युक्त उक्त साधनों से होती है। भगवती श्रुति कहती है कि-

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।"
(मु० ३।२।३)

यह परमात्मा न प्रवचन से प्राप्त होता है न मेधा अर्थात् ज्ञान से और न बहुत श्रवण से। जिस पुरुष को प्रसन्न होकर यह स्वीकार कर लेता है उसी पुरुषविशेष से यह प्राप्त होने लायक है। उसी को यह अपने रूप को प्रकाशित करता है।

भगवान् भाष्यकार ने भी इस श्रुति का अर्थ करते हुए कहा है कि--

"अयमर्थः—"यथा न पृथिव्यामग्निश्चेतव्यो नान्तरिक्षे न दिवि हिरण्यं निधाय तु चेतव्यम्।" इत्यादौ केवलपृथिव्याद्यधिकरणकाग्निचयनं निषिध्य हिरण्यस्थापनपूर्वकं तद्विधीयते। तथात्रापि केवलेन प्रवचनसाधनेन मननेन श्रवणेन वेदमात्मस्वरूपं नासाद्यते। अपि तु निरतिशयप्रेमविशिष्टेनैव, एष आत्मा यं प्रीतिविशिष्टं पुरुषं वृणुते स्वीकरोति तेनैव पुरुषविशेषेणायं लभ्यः।

स्वीक्रियमाणता च स्वविषयकाखण्डानुरागवत्येव जायते इति लोकव्यवहारः ।' (आनन्दभाष्य १।१।१)

अभिप्राय यह है कि-जैसे अग्निचयन प्रकरण में यह लिखा है कि "पृथ्वी में अग्निका चयन (स्थापन) न करना चाहिये। न अन्तरिक्ष में और न आकाश में किन्तु सुवर्ण रखकर उसके ऊपर ही अग्नि का स्थापनकरना चाहिये।" इत्यादि स्थानों में जैसे केवल पृथिवी में अग्निचयन का निषेध करके सुवर्ण स्थापन पूर्वक अग्निस्थापन का विधान किया गया है। इसी प्रकार नायमात्मा इस श्रुति के पूवभाग में केवल श्रवण मनन और निदिध्यासन से आत्मलाभ नहीं होता यह कहा गया है। किन्तु इस के उत्तर भाग में स्पष्ट कर कह दिया कि अत्यन्त प्रेमविशिष्ट पुरुष ही उसकी प्राप्तिकर सकता है। यह परमात्मा जिस प्रीतिविशिष्ट पुरुष को अपनाता है उसी प्रीतिविशिष्ट पुरुष के द्वारा यह प्राप्य है। जगत् का ऐसा व्यवहार है कि जिसका जिसमें अखण्ड प्रेम होता है वह उसे अवश्य ही स्वीकार करता है ॥१३॥

**निगमागमसारज्ञा भक्ताः श्रीरामनिर्भरा।**
**शरणागतिमेवैकां गृह्णन्त्यात्मप्रसादिनीम् ।१४।**

पदच्छेदः निगमागमसारज्ञाः भक्ताः श्रीरामनिर्भराः शरणागतिम् एव एकाम् गृह्णन्ति आत्मप्रसादनीम् ।

अन्वयः-निगमागमसारज्ञाः श्रीरामनिर्भराः भक्ता एकामात्मप्रसादिनीं शरणागतिमेव गृह्णन्ति ।

शब्दार्थः-निगमागमसारज्ञाः = निगम ( वेद ) और आगम ( पञ्चरात्र ) के सार ( तत्त्व ) को जानने वाले । श्रीरामनिर्भराः = श्री अर्थात् भगवती श्रीजानकीजी सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पर निर्भर रहने वाले। भक्ताः = भगवद्भक्त महानुभाव। एकाम् = केवल । आत्मप्रसादिनीम् - परमात्मा को प्रसन्न करनेवाली। शरणगतिम् = शरणागति को । एव = ही । गृह्णन्ति = ग्रहण करते हैं ।

अर्थः- वेद और पञ्चरात्रादि आगमों के तत्त्व को जानने वाले तथा श्रीसीतारामजी के ऊपर ही निर्भर रहने वाले भगवद्भक्त महानुभाव भगवान् को प्रसन्न करनेवाली भगवान् को शरणागतिमात्र को ही स्वीकार करते हैं ॥ १४ ॥

**सकृदेव प्रपन्नाय कृता श्रीरामयाचना ।**
**सर्वाभयविधात्री स्यात् सत्यं श्रीमुखभाषणम् ।१५**

पदच्छेदः-सकृत एव प्रपन्नाय कृता श्रीरामयाचना सर्वाभयविधात्री स्यात् सत्यम् श्रीमुखभाषणम् ।

अन्वयः-प्रपन्नाय सकृदेव कृता श्रीरामयाचना सर्वाभयविधात्री स्यात् श्रीमुखभाषणं सत्यमस्ति ।

शब्दार्थः -प्रपन्नाय = प्रपत्ति के लिये । सकृत = एकवार । एव = भी । कृता = की हुई । श्रीरामयाचना = भगवान् श्रीरामजी से याचना । सर्वाभयविधात्री = सर्व से अभय करनेवाली। स्यात = होती है । श्रीमुखभाषणम् = भगवान् श्रीरामजी का कथन ।

सत्यम् = सत्य (अस्ति = है)

अर्थः-शरणागति के लिये भगवान् श्रीरामजी से एकबार भी की गई याचना सब से अभय करने वाली होती है। यह भगवान् श्रीरामजी का कथन सत्य है।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में भगवान् श्रीरामजी का कथन इस प्रकार है कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि "जो एकबार भी मेरी ओर आजाता है, अर्थात् प्रपत्ति स्वीकार कर लेता है, उसको मैं प्राणीमात्र से अभय दे देता हूँ यह मेरा व्रत है।

इस चरममन्त्र में सकृत् पद से उपायान्तर की निवृत्ति और एव पद से उपायान्तर की निरपेक्षता प्रतिपादित की गई है। प्रपन्नाय पद से प्रपत्तिरूप परमोपाय का आश्रय और तव पद से भगवान् श्रीरामजी का ही उपायत्व प्रतिपादित होता है। अस्मि पद से भगवत्प्रपत्तिरूप उपाय का और इति पद से अनन्यता का प्रतिपादन होता है। चकार से अनुक्त अन्यउपाय और याचते पद से उपाय के सेवन करनेवाले अधिकारी का लक्षण कहा जाता है। अभय पद से भगवत्प्राप्ति के प्रतिबन्धक (विरोधी) अहंकार अपचार पापाचारता आदि का वारण तथा सर्वभूतेभ्यः पद से प्राप्य के प्रतिबन्धक का स्वरूप कहा गया है। ददामि पद से उपाय की सर्वशक्तिमत्ता और एतद् पद से सं-

शयाभाव कहा गया है। मम पद से निर्भरता का अनुसन्धान और प्रतम् पद से इसमें दृढता का प्रतिपादन किया जाता है।

इस चरममन्त्र के चार अर्थ होते हैं--तात्पर्यार्थ, वाक्यार्थ, प्रधानार्थ और अनुसन्धानार्थ।

भगवान् की प्रसन्नता का संश्रय करना तात्पर्यार्थ है।

प्रापक भगवान् के स्वरूप का निरूपण वाक्यार्थ है।

परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण प्रधानार्थ है।

और निर्भरता का अनुसन्धान करना अनुसन्धनार्थ हैं।

इस विषय को अच्छी प्रकार से समझने के लिये भगवान् आनन्दभाष्यकारकृतश्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ग्रन्थ को देखना चाहिये ॥ १५ ॥

**ईश्वरप्रणिधानाच्च भगवद्धर्मपालनात्।**
**आचार्यसंश्रयाच्चैव जीवो बन्धाद्विमुच्यते ।१६।**

पदच्छेदः-ईश्वरप्रणिधानात् च भगवद्धर्मपालनात् आचार्यसंश्रयात् च एव जीवः बन्धात् विमुच्यते।

अन्वयः-ईश्वरप्रणिधानाद् भगवद्धर्मपालनादाचार्यसंश्रयाच्चैव जीवः बन्धाद्विमुच्यते।

शब्दार्थः-ईश्वरप्रणिधानात् = ईश्वर का ध्यान करने से। भगवद्धर्मपालनात् = वैष्णवधर्मके पालन करने से। आचार्यसंश्रयात् = पूज्यगुरुदेव का आश्रय करने से। च = और। एव = ही। जीवः = प्राणी। बन्धात् = भवबन्धन से। विमुच्यते = छूट

जाता है ।

अर्थः-ईश्वर का ध्यान करने से वैष्णवधर्म का पालनकरने और आचार्य ( पूज्यपाद गुरुदेव ) के समाश्रय से ही प्राणी भवबन्धन से छूटता है ॥ १६ ॥

**भगवद्धर्मतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ।**
**प्रपन्ना निर्भरा रामे वैष्णवा भुवि दुर्लभाः ॥१७॥**

पदच्छेदः-भगवद्धर्मतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः प्रपन्नाः निर्भराः रामे वैष्णवाः भुवि दुर्लभाः ।

अन्वयः-भगवद्धर्मतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृता रामे निर्भराः प्रपन्नाः वैष्णवा भुवि दुर्लभाः ।

शब्दार्थः-भगवद्धर्मतत्त्वज्ञाः = वैष्णवधर्म के तत्त्व को जानने वाले । पञ्चसंस्कारसंस्कृता = धनुर्बाण ऊर्ध्वपुण्ड्, तुलसी की कण्ठी भगवद्दास्यबोधक नाम और तारक श्रीराममन्त्रराज की दीक्षा इन पाँच संस्कारों से गुरुदेव द्वारा संस्कृत हुए । रामे = भगवान् श्रीरामजीमें । निर्भराः = मेरी रक्षा करेंगे इस प्रकार से विश्वास करनेवाले । प्रपन्नाः = भगवान् की शरण प्राप्त हुए । वैष्णवा; = भागवत महानुभाव । भुवि = पृथ्वी में । दुर्लभाः = दुष्प्राप्य हैं ।

अर्थ-वैष्णवधर्म के तत्त्व को जाननेवाले धनुर्बाण, ऊर्ध्वपुण्ड्र, तुलसी की कण्ठी, भगवद्दास्यपरकनाम और श्रीराम-मन्त्र की दीक्षा आदि पञ्चसंस्कारों से स्वाचार्य द्वारा संस्कृत हुए

भगवत्प्रपन्न वैष्णव महानुभाव पृथिवी पर दुर्लभ हैं अर्थात् बड़े पुण्य से मिलते हैं। वे महानुभाव धन्य हैं जिन्हें वैष्णवों का संसर्ग प्राप्त है ॥ १७ ॥

**रामात् परतरं तत्त्वं श्रुतीसिद्धान्तगोचरम् ।**
**तत्त्वज्ञा नैव पश्यन्ति तमेव शश्वदाश्रयेत् ॥ १८ ॥**

पदच्छेदः--रामात् पर तरं तत्त्वं श्रुतिसिद्धान्तगोचरम् तत्त्व-ज्ञाः न एव पश्यन्ति । शश्वत् तमेव आश्रयेत् ।

अन्वयः--तत्त्वज्ञा रामात् परतरं श्रुतिसिद्धान्तगोचरं तत्त्वं नैव पश्यन्ति । शश्वत् तमेव आश्रयेत ।

शब्दार्थः—तत्त्वज्ञाः = तत्त्व के जाननेवाले । रामात् = भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से । परतरं = पर । श्रुतिसिद्धान्तगोचरम् = श्रुतियों के अर्थात् वैदिक सिद्धान्त का विषय । तत्त्वम् = पदार्थ को । न = नहीं । एव = ही । पश्यन्ति = देखते हैं । शश्वतम् = निरन्तर । तम् = श्रीरामजी को । एव = ही । आश्रयेत = आश्रय करे ।

अर्थः-तत्त्ववेत्ता महानुभाव श्रीरामजी से परे वैदिकसिद्धान्त-प्रतिपाद्य तत्त्व नहीं देखते हैं । इसलिये बुद्धिमान् मुमुक्षुओं को चाहिये कि वे निरन्तर उन्हीं श्रीरामजी का ही आश्रय लेवें ।

विशेषविवेचन-भगवान् श्रीरामजी ही सब से पर तत्त्व हैं उनसे पर और कोई भी तत्त्व नहीं हैं इस विषय में नीचे लिखे प्रमाण हैं—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ (रामतापिनी )

योगी लोग अनन्त सत्य आनन्द और चित्स्वरूप अर्थात् अनन्त सच्चिदानन्दात्म स्वरूप भगवान् श्रीरामजी में रमण करते हैं इसलिये राम शब्द से पर ब्रह्मभगवान् श्रीरामजी कहे जाते हैं।

"परात्परतरोनिखिलहेयप्रत्यनीकगुणाकरो जगदादिकारणममिततेजोराशिर्ब्रह्मादिदेवैरप्युपास्यः स श्रीभगवान् दाशरथिरेव प्राप्यः दाशरथिरेव प्राप्यः"

( मैथिलीमहोपनिषत् )

पर से भी परतर सम्पूर्ण त्याज्यगुणों के विरोधी कल्याणगुणाकर जगत् के आदि कारण अनन्ततेजों की राशि ब्रह्मादि देवोंके भी उपास्य वे श्री भगवान् दाशरथि (दशरथपुत्र) श्रीरामजी ही प्राप्य हैं दाशरथि भगवान् श्रीरामजी ही प्राप्य हैं।

परमवैदिक ऋषिवर्य ब्रह्मसूत्रकार श्रीवेदव्यासजी तथा बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज बोधायन आदि आचार्यों के द्वारा स्वीकृत श्रीविशिष्टाद्वैतसिद्धान्त के तत्त्व त्रय का वर्णन करते हुए महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने भी कहा है कि—

सृष्टेरादौ विवेकाय कल्याणस्य नृणांसदा ॥
परात्परेण रामेण सीतया सहितेन च ।
यूयमुत्पादिता देव्योऽनन्ता नित्यविभूतयः ॥

( वाल्मीकि संहिता )

हे अनन्त और नित्य वैभवशालिनी श्रुतियो ! मनुष्यों के कल्याण और विवेक के लिये भगवती श्रीजानकीजी के सहित परात्पर भगवान् श्री रामजी ने ही पूर्वकल्प की आनुपूर्वी वाली तुम सबको उत्पन्न किया है।

अद्भुतरामायण में श्रीलक्ष्मणजी ने भी कहा है कि—

राम एव परं ब्रह्म रामो नित्यनिरामयः।
रामात्परतरो नास्ति सत्य जानीहि शङ्कर ! ॥

हे शङ्करजी भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं श्रीरामजी नित्य निरामय हैं। भगवान् श्रीरामजी से पर दूसरा कोई भी तत्त्व नहीं है यह सत्य है।

विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानरूपं स्वसुखैकहेतुम्।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥
(सनत्कुमार संहिता)

विज्ञान के हेतु बडे बडे दोष रहित नेत्रों वाले विज्ञानस्वरूप स्वसुख में अन्यनिरपेक्ष ( अन्य की अपेक्षा से रहित ) पापों के हरण करनेवाले आदि देव योगियों के हृदय कमल में रमण करने वाले पर से भी पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।

परं ब्रह्म परं तत्त्वं परं ज्ञानं परं तपः।
परं बीजं परं क्षेत्रं परं कारणकारणम् ॥
( वाल्मीकि रामायण सु० )

भगवान् श्रीरामजी ही पर ब्रह्म हैं परतत्व हैं पर ज्ञान हैं

पर तप हैं पर बीज हैं पर क्षेत्र हैं कारणों के भी पर कारण हैं १८

**इदं हि सर्वशास्त्राणां सारभूतं रहस्यकम् ।**
**सर्वान्तर्यामिणं रामं ज्ञात्वा सेवेत शुद्धधीः ।१६**

पदच्छेदः--इदम् हि सर्व शास्त्राणाम् सारभूतं रहस्यकम् सर्वान्तर्यामिणं रामम् ज्ञात्वा सेवेत शुद्धधीः ।

अन्वयः--शुद्धधीः सर्वान्तर्यामिणं रामं ज्ञात्वा सेवेत । इदं हि सर्व शास्त्राणां सारभूतं रहस्यकम् ।

शब्दार्थः--शुद्धधीः = शुद्धबुद्धि वाला मनुष्य । सर्वान्तर्यामिणम् = सब के अन्तर्यामी । रामम् = भगवान् श्रीरामजी को । ज्ञात्वा = जानकर । सेवेत = सेवन करे । इदम् = यह । सर्वशास्त्राणाम = सर्वशास्त्रों का । सारभूतम् = सारभूत । रहस्यकम् = रहस्य वस्तु । ( अस्ति = है ) ।

अर्थः--यह सम्पूर्ण शास्त्रों का सारभूत रहस्य है कि शुद्ध बुद्धि वाला मनुष्य चराचर सम्पूर्ण जगत् के अन्तर्यामी भगवान् श्रीरामजी को जानकर सेवन करे ॥ १९ ॥

**भगवद्भक्तिहीनानां द्वेषिणां च गुरोः सताम् ।**
**न श्रोतव्यं न मन्तव्यं वाक्यं भक्तिविवर्जितम् २०**

पदच्छेदः--भगवद्भक्तिहीनानाम् द्वेषिणाम् च गुरोः सताम् न श्रोतव्यम् न मन्तव्यम् वाक्यम् भक्तिविवर्जितम् ।

अन्वयः--भगवद्भक्तिहीनानां गुरोः सताञ्च द्वेषिणां भक्तिविवर्जितं वाक्यं न श्रोतव्यं न मन्तव्यम् ।

शब्दार्थः-भगवद्भक्तिहीनानाम् = भगवद्भक्ति से हीन पुरुषों के। गुरोः = गुरु के। च = और। सताम् = सन्तमहात्माओं के। द्वेषिणाम् = द्वेषी मनुष्यों के। भक्तिविर्जितम् = भक्तिरहित। वाक्यम् = वाक्य को। न = नहीं। श्रोतव्यम् = सुनना चाहिये। न = नहीं। मन्तव्यम् = मानना चाहिये।

अर्थः-भगवान् की भक्ति से हीन और साधु सन्तों तथा गुरु देव के द्रोही मनुष्य के भक्तिशून्य वाक्य को न सुनना चाहिये और न मानना ही चाहिये ॥ २० ॥

**ममताशून्यचेतस्कः पद्मपत्रमिवाम्भसा ।**
**प्रारब्धभोगपर्यन्तं देहकार्याणि साधयेत् ।२१।**

पदच्छेदः-ममताशून्यचेतस्कः पद्मपत्रम् इव अम्भसा प्रारब्ध-भोगपर्यन्तं देहकार्याणि साधयेत्।

अन्वयः-अम्भसा पद्मपत्रमिव ममताशून्यचेतस्कःप्रारब्धभोग-पर्यन्तं देहकार्याणि साधयेत्।

शब्दार्थः-अम्भसा = जल से। पद्मपत्रम् = कमल के पत्ते के। इव = समान। ममताशून्यचेतस्कः = ममतारहित चित्त वाला मनुष्य। प्रारब्धभोग पर्यन्तम् = पूर्वजन्मकृतकर्मों के फलों के भोग तक। देहकार्याणि = देह के कार्यों को। साधयेत् = साधन करे।

अर्थः-पुरुष को चाहिये कि वह जल से कमल के पत्ते के समान ममताशून्यचित्त वाला होकर प्रारब्ध कर्मों के भोग पर्यन्त देह के कार्यों का साधन करे अर्थात् निर्वाह करे ॥ २१ ॥

**कायेन वाचा मनसा धनेन च जनेन च ।**
**रामसेवा सदा कार्या भवपाशविमोचिनी ॥२२**

पदच्छेदः-कायेन वाचा मनसा धनेन च जनेन च रामसेवा सदा कार्या भवपाशविमोचिनी ।

अन्वयः-कायेन वाचा मनसा धनेन च जनेन सदा भवपाशविमोचिनी रामसेवा कार्या ।

शब्दार्थः-कायेन = शरीर से। वाचा = वाणीसे। मनसा = मन से। धनेन = धनसे। च = और। जनेन = जनसे। सदा = सर्वदा। भवपाशविमोचिनी = भवबन्धन से छुडानेवाली। रामसेवा = भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा। कार्या = करनी चाहिये।

अर्थः-शरीर वाणी मन धन और जन से सदैव भवबन्धन से छुडानेवाली भगवान् श्रीराचन्द्रजी की परिचर्या (कैङ्कर्य) करनी चाहिये ॥

विशेषविवेचन—

यहाँ पर यह अच्छी प्रकार से ध्यान में रखना चाहिये कि भगवद्भक्तिकरने में वेदोक्त तथा धर्मशास्त्रोक्त स्व स्व वर्ण और आश्रम के कर्मों का त्याग नहीं किया जाता है। किन्तु उनके कर्तृत्व का अभिमान तथा फलासक्ति ही त्यागी जाती है। स्वस्व वर्णाश्रम के अनुसार यागादि कर्म करने से तो भक्ति दृढ होती है।

बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज

यतिराज के दादागुरु भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने स्वरचित ब्रह्म-मीमांसा में कहा है कि—

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।४।१।१६।

अग्निहोत्रादि वर्णाश्रमकर्म तो विद्यारूप कार्य के लिये ही होते हैं। क्योंकि श्रुतियों में ऐसा ही देखा जाता है।

श्रीसम्प्रदायप्रधानाचार्य आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने भी इस सूत्र के भाष्य में कहा है कि—

अग्निहोत्रादिकं कर्म तु तत्कार्यायैव विद्याकार्यायैव। कुतः ? तद्दर्शनात्। "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन" (बृ० ४।४।२२।) इत्येवमादिश्रुतिष्वग्निहोत्रादीनां विद्यासाधनत्वदर्शनात्। अतो विद्योत्पत्त्यर्थमहरहरप्यग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठेयमन्यथा वर्णाश्रमधर्मविलोपे कल्मषमानसस्य विद्योत्पत्तिरेव न स्यादतो विद्यार्थत्वेन तदनुष्ठानमावश्यकम् ॥ १६ ॥' (आनन्दभाष्य ४।१।१६)

अग्निहोत्रादि कर्म तो विद्या अर्थात् भक्तिरूप कार्य के लिये ही हैं। यदि कहो कि क्यों ? तो इसका उत्तर सूत्रकार देते हैं कि तद्दर्शनात्। श्रुतियों में देखे जाने से। "उस ईश्वर को ब्राह्मण लोग वेदानुवचन यज्ञ दान तप और उपवास के द्वारा जानते हैं।" (बृ० ४।४।२२) इत्यादि श्रुतियों में अग्निहोत्रादि कर्मों की विद्यासाधनता (भक्तिसाधनता) देखी गयी है। इसलिये विद्या अर्थात् भक्ति को उत्पत्ति के लिये प्रतिदिन अग्निहोत्रादि कर्म करने ही चाहिये। नहीं तो वर्णाश्रमधर्म के लोप होने पर कलु-

षित मन वाले पुरुष को भक्ति की उत्पत्ति ही न होगी। इसलिये विद्या अर्थात् भक्ति के लिये अग्निहोत्रादि वर्णाश्रमधर्मों को करना ही चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है कि—

नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः॥ ४५॥
वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः॥ ४६॥
य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहिषुः परात्मनः।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम्॥ ४७॥
लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः॥ ४८॥

[ स्कन्ध ११ अ० ३ ]

जो अजितेन्द्रिय अज्ञानी पुरुष स्वयम् वेदोक्त कर्म को नहीं करता है; वह कर्म न करने से होने वाले अधर्म से वारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है; इस कारण से मृत्युपाश में बँधा ही रहता है॥ ४५॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र को अर्पित किये हुए वेदोक्त कर्म को फल की आसक्ति से रहित होकर करता हुआ मनुष्य नैष्कर्म्य सिद्धि अर्थात् सायुज्यमुक्ति को पाता है। तत्तत्फलश्रुति तो तत्तत्कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिये हैं॥४६॥ जो आत्मा के हृदय की ग्रन्थि को शीघ्र ही काटना चाहे उसे चाहिये कि तन्त्रोक्त विधि से भगवान् की पूजा करे॥४७॥

जो आत्मा के हृदय की ग्रन्थि को शीघ्र ही काटना चाहे उसे चाहिये कि तन्त्रोक्त विधि से भगवान् की पूजा करे ॥४७॥ जिसने शुश्रूषा ( सेवा ) करके गुरु के अनुग्रह ( कृपा ) को प्राप्त किया है उसे चाहिये कि स्वाचार्य के द्वारा बताई हुई प्रणाली (पद्धति =विधि ) से स्वाभिमत मूर्ति के द्वारा महापुरुष भगवान् श्री रामचन्द्रजी का अर्चन करे ॥ ४८ ॥

महापुरुष भगवान् श्रीरामजी ही हैं यह श्रीमद्भागवत में इसी स्कन्ध में कहा है कि--

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभिष्टदं ऽहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यं ।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्

( अ० ५-३३ )

हे प्रणतपाल ! हे महापुरुष सर्वदा ध्यान करने योग्य पराभव को नाश करने वाले मनोऽभिवाञ्छित पदार्थ देनेवाले गङ्गादि लोक पावन तीर्थों की उत्पत्ति के स्थान अतएव परम पवित्र भगवान् शङ्करजी और ब्रह्माजी से स्तुत शरण में आये हुए पुरुषों के प्रति साधु ( अच्छा) व्यवहार करने वाले अपने सेवकों की आर्ति अर्थात् दुख को हरण करनेवाले और भवसागर को तरने के लिये जहाज रूप आपके चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

महापुरुष भगवान् श्रीरामजी को सामान्य रूप से कहकर

विशेषरूप से कहते हैं कि—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराजलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
(अ० ५ । ३४)

हे धर्मिष्ठ ! आप पिता महाराज श्रीदशरथजी के वचन से महादुस्त्यजसुरवाञ्छित राज्यलक्ष्मी को त्यागकर वन को गये हैं। तथा अपनी प्राणवल्लभा जगज्जननी श्रीजानकीजी के अभिलषित (पसन्द) मायामृग (कनकमृग = मारीच) के पीछे आप दौड़े हैं। हे महापुरुष ! भगवान श्रीरामजी ! मैं आपके चरणारविन्दों को प्रणाम करता हूँ ॥

इन्हीं महापुरुष भगवान् श्रीरामजी को गीता में उत्तमपुरुष शब्द से कहा है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
(गीता १५ अ०)

परमात्माशब्द से कहा हुआ उत्तमपुरुष तो बद्ध और मुक्त जीवों से अन्य हैं।

इस गीता के कथन से जीव और ब्रह्म (परमात्मा = भगवान् श्रीरघुनाथजी) का ऐक्य कहने वाले अद्वैतवादी लोगों के मत का खण्डन भी हो जाता है ॥ २२ ॥

**वात्सल्याज्जानकीदेव्याः साधुसद्गुरुसेवनात् ।**

**शश्वच्छ्रीरामचन्द्रो हि कृपापूर्णो भवेज्जने।२३।**

पदच्छेदः-वात्सल्यात् जानकीदेव्याः साधुसद्गुरुसेवनात् शश्वत् श्रीराचन्द्रो हि कृपापूर्णः भवेत जने ।

अन्वयः-साधुसद्गुरु- सेवनाज्जानकीदेव्य वात्सल्य च श्री रामचन्द्रो हि जने शश्वत् कृपापूर्णो भवेत् ।

शब्दार्थः-साधुसद्गुरुसेवनात् = सन्तों और सद्गुरु (वैष्णवगुरु) के सेवन से । च = और । जानकीदेव्याः = भगवती श्रीजानकी देवी के । वात्सल्यात = वात्सल्य से । रामचन्द्रः = भगवान् श्री रामचन्द्रजो । जने = अपने सेवक पर । शश्वत् = निरन्तर । कृपा-पूर्ण = कृपा से पूर्ण । भवेत् = होते हैं ।

अर्थः-सन्त महात्माओं और पूज्यगुरुदेव के सेवन से और जगज्जननी श्रीजानकीजी के वात्सल्य से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तपर निरन्तर कृपापूर्ण होते हैं ।। २३ ।।

**अधिष्ठात्रीं हि लोकानां सर्वशक्तिशिरोमणिम् ।**
**ज्ञात्वा सीतां महादेवीं नान्यां काञ्चिद् भजेद्बुधः २४**

पदच्छेदः-अधिष्ठत्रीं हि लोकानां सवशक्तिशिरोमणिम् ज्ञात्वा सीताम् महादेवीम् नान्याम् काञ्चिद् भजेद् बुधः ।

अन्वयः-लोकानामधिष्ठात्रीं सवशक्तिशिरोमणिं महादेवीं सीतां हि ज्ञात्वा बुधोन्यां काञ्चिन्न भजेत् ।

शब्दार्थः-लोकानाम् = लोकों को । अधिष्ठात्रीं = स्वामिनी । सर्वशक्तिशिरोमणिम् = सर्वशक्तियों की शिरोमणि स्वरूप । महा-

देवीम् = महादेवी । सीताम = भगवती श्रीजानकीजी को । हि = निश्चय करके । ज्ञात्वा = जानकर । बुधः = बुद्धिमान् । अन्याम् = अन्य । कञ्चित् - किसी शक्तिको । न = नहीं । भजेत् = सेवन करे ।

अर्थः-सर्वलोकों की स्वामिनी और सर्वशक्तियों की शिरोमणि स्वरूप महादेवो भगवती श्रीसीताजी को जानकर बुद्धिमान् मनुष्य अन्य किसी शक्ति का सेवन न करे ॥ २४ ॥

**राम एव परं ब्रह्म तत्समोऽभ्यधिकश्च कः ।**
**लौकिके वैदिके ध्येयः पूज्यश्च स हि कर्मणि ॥**

पदच्छेदः-रामः एव परं ब्रह्म तत्समः अभ्यधिकः च कः लौकके वदिके ध्येयः पूज्यः स एव कमणि ।

अन्वयः-राम एव ब्रह्म तत्समोऽभ्यधिकश्च कः ? लौकिके वदिके कमणि स हि ध्येयः पूज्यश्च ।

शब्दार्थः-राम = भगवान् श्रीरामजी । एव = ही । परम् = सब से पर । ब्रह्म हैं । तत्समः = उन भगवान् श्रीरामजी के समान अभ्यधिकः = बडा ( अधिक ) । कः = कौन । ( अस्ति = हैं ) । लौकिके = लौकिक । वदिके = वैदिक । कमणि कर्म में । स = वह श्रीरामजी । हि = निश्चय करके । ध्येयः = ध्यान करने योग्य च = और । पूज्य = पूज्य । अस्ति = हैं ।

अर्थः-भगवान् श्रीरामजी हो परब्रह्म हैं । उनके बराबर और उनसे अधिक कौन है ? अर्थात् उनके बराबरा और उनसे अधिक कोई भी नहीं है । लौकिक और वैदिक कर्मों में वे भगवान् श्री-

रामजी ध्यान करने योग्य और पूजने योग्य हैं।

भगवान् श्रीरामजी को परब्रह्मता में नीचे लिखी श्रुति प्रमाण है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।

इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥ (रामतापिनी)

इति श्रुति का अर्थ आगे लिखा जायगा॥ २५॥

**भगवच्छक्तिसंपन्नाः ससुरासुरमानवाः।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा यत्किञ्च भुवने सदा॥२६॥**

पदच्छेदः—भगवच्छक्तिसम्पन्नाः ससुरासुरमानवाः तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः यत्किञ्च भुवने सदा।

अन्वयः—ससुरासुरमानवा भगवच्छक्तिसम्पन्नास्तेन भुवने यत्किञ्च (तत्) सदा त्यक्तेन भुञ्जीथा।

शब्दार्थ—ससुरासुरमानवाः=देवों और दैत्यों के सहित सब मनुष्य। भगवच्छक्तिसम्पन्नाः=भगवान् की शक्ति से युक्त हैं। तेन=इसलिये। भुवने=लोक में। यत्किञ्च=जो कुछ (अस्ति=है) (तत्=वह) त्यक्तेन=त्यागभाव से। भुञ्जीथाः=उपभोग करो।

अर्थः—जगत् के देवदानव और मानव सभी भगवान् की शक्ति से युक्त हैं। इसलिये जगत् में जो कुछ है उसका हमेशा त्यागभाव से उपभोग करो॥ २६॥

**ज्ञानयोगात् क्रियायोगाद्भक्तियोगाच्च सर्वथा।**

दैन्यादात्मार्पणं श्रेष्ठं प्रोक्तं श्रीरामतोषकम् २७

पदच्छेदः-ज्ञानयोगात् क्रियायोगाद् भक्तियोगात् च सर्वथा दैन्याद् आत्मार्पणम् श्रेष्ठम् प्रोक्तम् श्रीरामतोषकम् ।

अन्वयः-दैन्यात् = सर्वथाऽऽत्मार्पणं क्रियायोगाज्ज्ञानयोगाच्च श्रेष्ठं श्रीरामतोषक प्रोक्तम् ।

शब्दार्थः-दैन्यात् = दीनभाव से । सर्वथा = सर्वप्रकार से । आत्मार्पणम् = आत्मा का समर्पण । क्रियायोगात् = क्रियायोग से । च = और । ज्ञानयोगात् = ज्ञानयोग से । श्रेष्ठम् = उत्तम । श्रीरामतोषकम् = भगवान् श्रीरामचन्द्र को सन्तुष्ट करनेवाला । प्रोक्तम् = कहा गया है ।

अर्थः-दीनभाव से अपने आत्मा का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित करदेना कर्मयोग और ज्ञानयोग से भी श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करने वाला कहा है ।

विशेषविवेचन-दीनभाव से अपने आत्मा के भगवत्समर्पण को आत्मनिवेदन, न्यास प्रपत्ति तथा शरणागति आदि शब्दों द्वारा कहते हैं । श्रीभरद्वाज संहिता में कहा भी है कि—

निश्चितेऽनन्यसाध्यस्य परत्रेष्टस्य साधने ।

अयमात्मभरन्यासः प्रपत्तिरिति चोच्यते ॥

अन्य उपायों से असाध्य मुक्ति के निश्चित उपायभूत भगवान् में आत्मा के भारका रखदेना ही प्रपत्ति शब्द से कहा जाता है ।

इस प्रपत्तियोग में यागादि की भांति जाति कुल देशकालादि की अपेक्षा नहीं होती है -

न जाति भेदं न कुलं न लिङ्गं न गुणक्रियाः ।
न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते ॥
( भारद्वाज० )

यह शरणागति योग ब्राह्मणादिजातिभेद, शाण्डिल्यगोत्रादि उत्तमकुल, स्त्री पुरुषआदि लिङ्ग, विद्वत्तादिगुण, यागादि क्रिया, दानादि की तरह पुण्यतीर्थादि देश तथा पुण्यपर्वादि काल तथा युवा वृद्धादि अथवा पवित्रतादि अवस्थाओं की अपेक्षा नहीं करता है ।

निषादराज गुह गीध तथा शबरी आदिकों की कौन उत्तम जाति थी ? प्रह्लाद का कौनसा उत्तम कुल था ? शबरी द्रौपदी तथा कुन्ती आदि कहां पुरुष थीं ? गज तथा अजामिलादि में कौन से गुण और यज्ञादि क्रियायें थीं ? श्रीविभीषणजी को कौनसा देश और काल प्राप्त था ? प्रह्लाद ध्रुव आदि कीकौनसी प्रौढावस्था थी ? द्रौपदी को कौनसी पवित्रावस्था थी ? उक्तसभी महानुभावों को जातिकुललिङ्ग गुण क्रिया देशकाल तथा अवस्थादि के अभाव में भी प्रपत्तियोग प्राप्त हुआ है ।

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने भी कहा है कि—

सर्वे प्रपत्तरधिकारिणोमताः
शक्ता अशक्ताः पदयोर्जगत्प्रभोः ।
नापेक्ष्यते तत्र कुलं बलञ्च नो
न चापि कालो न हि शुद्धताऽपि वा ॥

( श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर )

जगत्प्रभु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की प्रपत्ति के अधिकारी शक्त तथा अशक्त सभी माने गये हैं। भगवत्प्रपत्ति में अर्थात् भगवान् की शरणागति में कुल बल काल तथा पवित्रतादि अपेक्षित नहीं होते हैं।

सनत्कुमारसंहिता में भी कहा है कि—

प्रपत्तः कचिदप्येव परापेक्षा न विद्यते।
सा हि सर्वत्र सर्वेषां सर्वकामफलप्रदा ॥

अन्य उपायों की तरह प्रपत्ति को कहीं भी अन्य की अपेक्षा नहीं है। वह प्रपत्ति सर्वदेश में और सवकाल में सभी को सभी अभीष्ट फलों को देने वाली है।

भगवत् शरणागति को कर्मयोग और ज्ञानयोग से भी श्रेष्ठ कहने का कारण यह है कि भगवत्प्राप्ति केवल कमयोग और केवल ज्ञान योग से होती ही नहीं है—भगवती श्रुति कहती है कि—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥"
( मु० ३।२।३ )

यह परमात्मा केवल प्रवचन साधन ध्यान और श्रवण से नहीं प्राप्त हो सकता है। किन्तु यह परमात्मा जिस प्रीतिविशिष्ट पुरुष को अपनाता है उसी पुरुष विशेष के द्वारा यह प्राप्त होने योग्य है।

इसी लिये भगवान् ने स्वयं कहा है कि–

'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत'। (गीता)

हे अर्जुन सब प्रकार से उस ईश्वर की ही शरण में जाओ। उस शरणागति के भगवदनुकूलता के संकल्प आदि पांच अङ्ग है'। वह इस प्रकार–

प्रपत्तिरानुकूल्यस्य सङ्कल्पोऽप्रतिकूलता।
विश्वासो वरणं न्यासः कार्पण्यमिति षड्विधा।(भारद्वाज०)

भगवदनुकूलता का सङ्कल्प, प्रतिकूलता का त्याग, 'भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे' ऐसा विश्वास, भगवान् को उपाय रूपसे स्वीकार करना, आत्मसमर्पण और अपनी असमर्थता का अनुसन्धान करना यह छः भेद प्रपत्ति के हैं। इनमें से आत्मनिवेदन अङ्गी अर्थात् प्रपत्ति है और शेष पांच अङ्ग हैं।

यास्वधर्मेऽभिरतिः सा भवत्यनुकूलता।
वर्जनं प्रतिषिद्धानां तथैषाऽप्रतिकूलता॥
वेदवेदान्तविज्ञानाद् विश्वासो गोप्तरिस्वयम्।
गोप्तृत्ववरणाद्यन्तु विष्णोरर्चादिकं मतम्॥
प्रपत्तिरात्मनिक्षेपो दास्यचिन्हैकलक्षणः।
सतां देशिकमुख्यानां सेवा कार्पण्यमुच्यते॥

(भारद्वाज संहिता)

जो स्वधर्म में प्रेमहै वही अनुकूलताहै। प्रतिषिद्ध विषयों का त्यागही अप्रतिकूलता है। वेदवेदान्त के ज्ञान से भगवान् में स्वयं विश्वास होता है कि भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे। भगवान्

विष्णु ( व्यापक भगवान् श्रीजानकीनाथजी ) का आराधनादि गोप्तृत्ववरण अर्थात भगवान् के रक्षकत्व का स्वीकार है। प्रपत्ति आत्मसमर्पणको कहते हैं। उसका लक्षण दास्यचिन्ह अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र् तुलसीकाठी तथा धनुर्बाणादि भगवदायुधों की मुद्रा का धारण करना है। सन्त महानुभावों और मुख्याचार्यों का सेवन ही कापरय कहा जाता है ॥ २७ ॥

**श्रवणंद्वारमित्याहुर्भगवत्तत्वबोधकम् ।**
**उत्तमश्लोकवीर्याणि नामानि शृणुयात्ततः २८**

पदच्छेदः-श्रवणम् द्वारम् इति आहुः भगवत्तत्वबोधकम् उत्तम श्लोकवीर्याणि नामानि शृणुयात ततः ।

अन्वयः-भगवत्तत्वबोधकश्रवण द्वारमित्याहुस्तत उत्तमश्लोक-वीर्याणि नामानि च शृणुयात ।

शब्दार्थः-भगवत्तत्वबोधकम्-भगवान् श्रीरामजी का ज्ञान करानेवाला। श्रवण-श्रोत्र को। द्वारम-द्वार (अत्यन्त साधक)। इति=यह। आहुः-कहते हैं। ततः-उससे। उत्तमश्लोकवीर्याणि उत्तमश्लोक (उत्तमयश) वाले भगवान् श्रीरामजी के पराक्रम को। नामानि=नामों को। शृणुयात्-सुनै।

अर्थः-भगवान् श्रीरामजी के बोधकराने वाले श्रोत्र (कान)को द्वार कहते हैं। उस श्रोत्र से भगवान् श्रीरामजी के पराक्रमों (पराक्रम दिखानेवाले चरित्रों) को और भगवान् श्रीरामजी के नामों को सुनना चाहिये ॥ २८ ॥

**प्रिया भागवता येषां तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम् ।
वशीभूतो हरिर्येषां हृदयाब्जान्न सर्पति ॥२६॥**

पदच्छेदः-प्रिया भागवताः येषाम् तेषाम् किंचित् न दुर्लभम् वशीभूतः हरिः येषाम् हृदयाब्जात् न सर्पति ।

अन्वयः-वशीभूतो हरिर्येषां हृदयाब्जान्न सर्पति ते भागवता येषां प्रियास्तेषां किञ्चिद् दुर्लभं न ( अस्ति ) ।

शब्दार्थः- वशीभूतः = भक्ति के द्वारा वश में किये हुए । हरिः = भगवान् श्रीरामजी । येषाम् = जिन्हों के । हृदयाब्जात् = हृदयकमल से । न = नहीं । सर्पति = चले जाते हैं । ते = वे । भागवताः = वैष्णव महानुभाव । येषाम् = जिन पुरुषों के । प्रियाः = प्रिय हैं । तेषाम् = उन पुरुषों को । किञ्चित् = कोई वस्तु । दुर्लभं = अलभ्य । न = नहीं । ( अस्ति = है ) ।

अर्थः-भक्ति से वश हुए भगवान् श्रीरघुनाथजी जिनके हृदय कमल से दूर नहीं होते हैं वे वैष्णव महानुभाव जिन्हें प्रिय लगते हैं, उन महानुभावों को कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं। अर्थात् उन्हें इस लोक में पुत्र कलत्र धन आरोग्य राज्यादि पदार्थ मिलते हैं और देहत्याग के अनन्तर उन्हीं नित्य और निरतिशय सुखस्वरूप मोक्ष भी मिलता है ॥ २९ ॥

**देशान् समाश्रयेत् पुण्यान् भगवद्भक्तिवर्धकान् ।
हरेरर्चाश्रितांश्चैव साधुभिः सेविताञ्छुभान् ॥**

पदच्छेदः-देशान् समाश्रयेत् पुण्यान् भगवद्भक्तिवर्धकान् हरेः अर्चाश्रितान् च एव साधुभिः सेवितान् शुभान् ।

अन्वयः-भगवद्भक्तिवधकान् हरेरर्चाश्रितांश्च साधुभिः सेवितान्छुभन् देशानेव समाश्रयेत ।

शब्दार्थः-भगवद्भक्तिवधकान् = भगवान् की भक्ति को बढाने वाले । हरेः = भगवान् के । अर्चावतार ( भगवन्मूर्त्ति ) से आश्रित । च = और । साधुभिः = साधुमहात्माओं से । सेवितान् = सेवित । शुभान् = अच्छे । पुण्यान् = पवित्र । देशान् = देशों को । एव = ही समाश्रयेत = आश्रय ( अवलम्बन ) अर्थात् कालक्षेप के लिये परिग्रहण करे ।

अर्थः- कालक्षेप के लिये भगवद्भक्ति के बढाने वाले भगवान् के अर्चाविग्रह वाले और साधुमहात्माओं से सेवित शुभ और पवित्र देश का ही ग्रहण करना चाहिये ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में कहा भी है कि--

दिव्येषु देशेषु सतां प्रसङ्गं तदीयकैङ्कर्यपरायणो वै ।

यावच्छरीरान्तमहर्दिवं तत्कथामुदारां शृणुयाद्भवघ्नीम् ॥

श्रीवैष्णवों की परिचर्या ( सेवा ) में तत्पर होकर पवित्र तीर्थों में सन्तमहात्माओं की सङ्गति करता हुआ जब तक शरीर रहे तब तक भवबाधा को विनाश करनेवाली भगवत्कथा को रात दिन श्रवण करना चाहिये ॥ ३० ॥

**अर्चयेत् परया भक्त्या राममूर्तिं मनोहरां ।**

**ससीतां सानुजाञ्चैव सपार्षदां च सायुधाम् ३१**

पदच्छेदः-अर्चयेत् परया भक्त्या राममूर्तिम् मनोहराम् ससीताम् सानुजाम च एव सपार्षदाम् च सायुधाम्।

अन्वयः-परया भक्त्या ससीतां सानुजां सपार्षदां सायुधां चैव मनोहरां राममूर्तिमर्चयेत्।

शब्दार्थः-परया = उत्कृष्ट ( अनन्य ) भक्त्या = भक्ति ( प्रेम) से। ससीताम् = जगज्जननी श्रीसीताजी के सहित। सानुजाम् = छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजी सहित। सपार्षदां = श्रीहनुमानजी आदि पार्षदों समेत। सायुधां श्रीशाङ्गधनुष तथा वाणादि आयुधों से युक्त। च = और। एव = ही। मनोहराम् = मन को हरण करने वाली (अतिसुन्दर)। राममूर्त्तिम् = श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति को। अर्चयेत् = पूजना चाहिये।

अर्थः-परा भक्ति के द्वारा भगवती श्रीजानकीजी श्रीलक्ष्मणादि छोटे भाइयों श्रीहनुमान्जी आदि पार्षदों और शाङ्ग घनुष तथा वाणादि दिव्य आयुधोंसे युक्तही परममनोहर श्रीरामजी की मूर्त्ति को पूजना चाहिये ॥ ३१ ॥

**भगवच्छेषनिर्माल्यं नैवेद्यं चरणोदकम्।**
**दुर्लभं ब्रह्मरुद्राद्यैरुपास्यं भक्तिवर्धकम् ॥३२॥**
**सेवनीयं सदा विज्ञैर्वैष्णवै रामवल्लभैः।**
**साधुसद्गुरुपादाब्जतीर्थं परमपावनम् ॥३३॥**

पदच्छेदः-भगवच्छेषनिर्माल्यम् नैवेद्यम् चरणोदकम् दुर्लभम् ब्रह्मरुद्राद्यैःउपास्यम् भक्तिवर्धकम् सेवनीयम् सदा विज्ञैः वैष्णवैः रामवल्लभैः साधुसद्गुरुपादाब्जतीर्थं परमपावनम्।

अन्वयः-ब्रह्मरुद्राद्यैरुपास्यं भक्तिवर्धकं दुर्लभं परमपावनं भगच्छेषनिर्माल्यं नैवेद्यं चरणोदकं साधुसद्गुरुपादाब्जतीर्थञ्च विज्ञै रामवल्लभवैष्णवैः सदा सेवनीयम् ।

शब्दार्थः-ब्रह्मरुद्राद्यैरुपास्यम् = ब्रह्माजी तथा रुद्रादि देवताओं से आराधन करने योग्य । भक्तिवर्धकम् = भक्ति को बढाने वाले । दुर्लभम् = दुष्प्राप्य ( न मिलने लायक ) परमपावनम् = परमपवित्र । भगवच्छेषनिर्माल्यम् = भगवान् को चढे हुए पुष्प तुलसी आदि । नैवेद्यम् = भगवान् के निवेदित ( अर्पित ) अन्न मिष्टान्न दुग्धादिपदार्थ । चरणोदकम् = भगवान् का चरणामृत । साधुसद्गुरुपादाब्जतीर्थम् = साधु महात्मा और सद्गुरु ( वैष्णवगुरु) महानुभाव के चरण कमलों का जल । विज्ञैः = विद्वान् । रामवल्लभैः-भगवान् श्रीरामजी के प्यारे अथवा श्रीरामजी प्यारे हैं जिनके उन । वैष्णवैः = श्रीवैष्णवमहानुभावों के द्वारा । सदा = सर्वदा सेवनीयम् = सेवन करने योग्य है ।

अर्थः-श्रीब्रह्माजी तथा श्रीशङ्करजी आदि देवों के आराधन करने लायक भक्ति को बढानेवाले दुर्लभ और परमपवित्र भगवान् को चढे हुए पुष्प तुलसी आदि पदार्थ भगवन्नैवेद्य भगवच्चरणामृत तथा साधु महात्माओं और श्रीगुरुदेव के चरणकमलों के जल को विद्वान् और श्रीरामप्रिय वैष्णवों को सदैव सेवन करना चाहिये ।

विशेषविवेचन-भगवान्निवेदित वस्तु के सेवन का बडा ही माहात्म्य है । पद्मपुराण में कहा है कि-

परं मोक्षमवाप्नोति प्रसादाज्जगतीपतेः ।

( क्रियायोगसार खण्ड १३ अध्याय )

निखिल जगत् के स्वामी भगवान् के प्रसाद (निवेदितान्नादि)

श्रीमद्भागवत में भी कहा है कि —

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

स्कन्ध ११-६-४६ ।

श्रीउद्धवजी कहते हैं कि हे भगवन् आपके द्वारा उपभुक्त मालासुगन्ध तथा अलङ्कारादि से विभूषित और आपके उच्छिष्ट (प्रसाद)को भोजन करनेवाले हम आपके दास आपकी (दुरत्यय) माया को जीत रहे हैं ।

श्रीरामार्चा-माहात्म्य में भी कहा है कि—

ब्रह्महत्यादिकं पापं मनोवाक्कायकर्मजम् ।

कोटिजन्मार्जितं नश्ये द्रामभुक्तान्नभक्षणात् ॥

( अ० ३-७० )

करोड़ों जन्मों में उपार्जित किया हुआ मन वाणी और शरीर द्वारा किया हुआ ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पाप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के निवेदित अन्न के भोजन करने से नष्टहो जाते हैं।

वैष्णवमहानुभाव भगवान् को विना निवेदित किये अन्न-वस्त्रादि किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है कि—

वैष्णवाश्च न खादन्ति नैवेद्यभोजिनः सदा ।

( प्रकृतिखंड १०-५ ) ।

सदा भगवन्नैवेद्य भोजन करनेवाले वैष्णव महानुभाव भगवान् को विना निवेदित किये भोजन नहीं करते हैं।

जो लोग भगवन्निवेदित अन्न को नहीं खाते हैं वे इस लोक में दुखी होते हैं और मरणानन्तर नरक को प्राप्त होते हैं। जैसा कि श्रीरामार्चामाहात्म्य में कहा है कि--

रामार्चायाः प्रसादं तु न भुञ्जीत विधे यदि।
महादुखार्दितो भूत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

हे ब्रह्मा जी श्रीरामार्चा के प्रसाद को जो नहीं खाता है वह इस लोक में महान् दुःखी होकर रौरव नरक को जाता है।

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में कहा है कि—

शुभानिकर्माणि समर्पयेत् सदा रामाय भक्ष्यं च निवेद्य भक्षयेत्।

भगवान् श्रीरामजी को शुभ कर्म समर्पितकरै तथा श्रीरामजी को निवेदित करके भोज्य पदार्थों का भक्षण करे।

भगवत्प्रसाद के समान ही भगवच्चरणामृत की भी शास्त्रों में बड़ी महिमा वर्णित है। वह इस प्रकार—

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः।
तेभ्यः पापाः पलायन्ते वनतेयादिवोरगाः ॥

( ब्रह्म वैवर्त्त १०-५१ )

जो मनुष्य भगवान् के चरणोदक को नित्य पान करते हैं; उनसे पाप उसी प्रकार भागते हैं जैसे श्रीगरुड़जी से सर्प।

भगवच्चरणामृत निम्नलिखित प्रकार से बनता है—

उदकं चन्दनं चक्रं शङ्खं च तुलसीदलम् ।
घण्टानादः शिला ताम्रमष्टाभिश्चरणोदकम् ॥

जल, चन्दन, गोमतीचक्र, शङ्ख, तुलसीदल, घण्टानाद, श्रीशालग्रामशिला और ताम्बे का पात्र इन आठ पदार्थों से भगवान् का चरणामृत बनता है।

जैसी भक्ति भगवान् में की जाती है उसी प्रकार की भक्ति पूज्यगुरुदेव में और वैष्णवमहानुभावों में करनी चाहिये। शास्त्रों में ऐसा ही कहा है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

(श्वेताश्वतर)

जिसकी देव में अर्थात् भगवान् श्रीरघुनाथजी में परा भक्ति होती है जैसे देव में (श्रीरघुनाथजी में) पर भक्ति हो वैसे ही जिसे पूज्यगुरुदेव में पराभक्ति हो उसी महानुभाव को ये कहे हुए अर्थ (पदार्थ = तत्त्व) प्रकाशित होते हैं।

गुरोः प्रसादमासाद्य न किञ्चिद्दुर्लभं नृणाम ।

(भागवत ६-७-२४)

पूज्यगुरुदेव की कृपा को प्राप्त करने से मनुष्यों को कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

(भागवत ११-१७-२७)

भगवान् श्रीउद्धवजी से कहते हैं कि आचार्य अर्थात् पूज्य गुरुदेव को मेरा ही स्वरूप जानना चाहिये। गुरुदेव का कभी भी अपमान नहीं करनी चाहिये। उन में कभी मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिये क्योंकि गुरुदेव सर्वदेवमय हैं।

पद्मपुराण में भी कहा है कि -

नास्ति तीर्थं गुरुसमं वन्धच्छेदकरं द्विज।

(भूमिखण्ड १२३ अध्याय)

हे द्विज! भवबन्धन को काटने वाले गुरुदेव के समान कोई तीर्थ नहीं है।

पञ्चरात्र में भी कहा है कि--

गुरावीश्वरबुद्धिश्च तदाज्ञापरिपालनम्। (हनुमत्संहिता अ० ६)

पूज्यगुरुदेव में ईश्वरबुद्धि करनी चाहिये और उनकी आज्ञा का पालनकरना चाहिये।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्माता गुरुः पिता।
गुरुर्बन्धुर्गुरुर्मित्रं गुरुरेव सुखप्रदः॥
प्रातरुत्थाय शिष्यः स्वगुरोः सम्मुखमागतः।
साष्टाङ्गं प्रणमेन्नित्यं परया श्रद्धयान्वितः॥
रुष्टेषु सर्वदेवेषु रक्षतीह रमापतिः।
रुष्टे रमापतावत्र गुरू रक्षां करोति ह॥
कोऽपि रक्षाकरो नास्ति गुरौ संरुष्टतां गते।
ततः सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यो गुरुरञ्जसा॥

(बाल्मीकिसंहिता अ०)

गुरु ही ब्रह्मा हैं गुरु ही विष्णु हैं और गुरु ही माता पिता बन्धु मित्र आदि सम्बन्धी हैं और सुख देनेवाले हैं। शिष्य को चाहिये कि प्रातःकाल में उठकर पूज्य गुरुदेव के सन्मुख जाकर परम श्रद्धा से उनके चरणकमलों में साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करे। सबदेवों के रूठ जानेपर भगवान् रक्षा करते हैं; और भगवान् के रूठ जाने पर पूज्यगुरुदेव रक्षा करते हैं। परन्तु गुरुदेव के रुठ जाने पर कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों से गुरुदेव ही प्रसन्न करने योग्य हैं।

भगवान्भाष्यकारजी ने कहा भी है कि—

तथाविधं प्राप्यमथो सुवैष्णवः
सुचिन्तयन्नित्थमनुक्षणं प्रिय !
सदा सदाचाररतं गुरुं वरं
ज्ञातुं भजेताखिलसंशयच्छिदम् ।,,(वै० म० भा०)

हे प्रिय सुरसुरानन्द ! सदाचारपरायण मुमुक्षु वैष्णव इस प्रकार प्रतिक्षण विचार करता हुआ उपर्युक्त प्रकार से प्राप्य भगवान् श्रीरघुनाथजी को जानने के लिये समस्त संशयों को छेदन करने वाले सदा सदाचारनिरत गुरुदेव का आश्रयण करे।

श्रीमद्भागवत में भी कहा है कि--

तत्र भागवतान् धर्माञ्छिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः॥
११-३--२२

आत्मा और देव समझकर निष्कपट भावसे पूज्य गुरुदेव का

सेवन करे और आत्माप्रदान करने वाले हरि जिन से सन्तुष्ट (प्रसन्न) होते हैं उन भागवत (वैष्णव) धर्मों को सीखे।

पूज्य गुरुदेव का अपमान कभी न करना चाहिये।

ये गुर्वंवज्ञां कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम ॥

(अगस्त्यसंहिता अ० ८)

जो शिष्य या शिष्या गुरुदेव का तिरस्कार करते हैं वे पापी और पुरुषों में अधम हैं; हे मुनि श्रेष्ठ! उनके नरक के क्लेशों का कभी अन्त नहीं होता है।

ये गुरुद्रोहिणो मूढाः सततं पापकारिणः।
तेषाञ्च यावत्सुकृतं दुष्कृतं स्यान्न संशयः॥

(अगस्त्य अ० ८)

जो पुरुष गुरुद्रोही हो जाते हैं वे निरन्तर पाप ही करते हैं। उनके किये सर्व पुण्य पापरूप में परिणत हो जाते हैं।

परन्तु यह बात खूब ध्यान में रखने के लायक है कि भगवन्निष्ठ विरक्त वैष्णव को ही गुरु बनाना चाहिये--

योगी जङ्गमसन्यासी न चास्य ब्राह्मणस्ततथा।
सत्यं सत्यं ममवाक्यं दीक्षा गुरुश्च वैष्णवः॥

पाषाणस्य क्रियते नौका सारभारं न धारयेत।
गृही गुरुर्न कर्त्तव्यो न तरेन्न च तारयेत॥

(नारद गीता)

मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष चाहने वाले पुरुष की मुक्ति के लिये योगी

आश्रम सन्यासी तथा गृहस्थ ब्राह्मण आदि गुरु नहीं हो सकते हैं। यह मेरा वचन सत्य है कि दीक्षागुरु वैष्णव ही हो सकता है। पाषाण की ( पत्थर की ) यदि नौका बनाई जावेगी तो वह भार को धारण नहीं कर सकेगी अर्थात् डूब जावेगी। उसी प्रकार गुरु गृहस्थ नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह स्वय नहीं तरता है और न तार सकता है।

श्रीभारद्वाज संहिता में कहा भी है कि--

न्यासे वाप्यर्चने वाऽपि मन्त्रमेकान्तिनः श्रयेत्।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण न परा गतिः॥

( अ०-१-३७ )

भगवान् की प्रपत्ति तथा अर्चन में एकान्ती वैष्णव गुरु के मन्त्र का ही आश्रय करे। अर्थात् विरक्त वैष्णव से उपदिष्ट मन्त्र का ही आश्रय करे। क्यों कि अवैष्णव गुरु के उपदिष्ट मन्त्र से परागति अर्थात् सायुज्यमुक्ति होती ही नहीं।

यहीं पर आगे चलकर चालीसवें श्लोक में भी कहा हैं कि-

स्वयं वा भक्तिसम्पन्नो ज्ञानवैराग्यभूषितः।
स्वकर्मनिरतो नित्यमहत्याचार्यतां द्विजः॥

भरद्वाज० १-४०

अथवा स्वयं जो ज्ञान और वैराग्य से विभूषित हो और निरन्तर स्वकर्म में निरत हो वह द्विज आचार्य होने योग्य है।

नाचार्यः कुलजातोऽपि ज्ञानभक्त्यादिवर्जितः।

भरद्वाज १-४१

पुरुष यदि उत्तम कुलवाला हो तो भी वह यदि ज्ञान वैराग्य और भगवद्भक्ति से वर्जित हो तो वह आचार्य अर्थात् गुरु नहीं हो सकता है।

इसीलिये भगवती श्रुति ने कहा है कि—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' ( मुण्डक १-२ )

उन परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी के ज्ञान के लिये पुरुष को चाहिये कि वह समित्पाणि होकर ( हाथ में समिधादि भेंट की सामग्री लेकर ) श्रोत्रिय और भगवान् श्रीरामजी में निष्ठावाले गुरु की शरण में जावे।

शिष्य को पूज्य श्री गुरुदेव के उच्छिष्ट ( प्रसादी ) और चरणामृत का पान नित्य करना चाहिये। कहा है कि—

गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुर्मूर्त्तेः सदा ध्यानं गुरोर्मन्त्रं सदा जपेत्॥

पूज्य श्रीगुरुदेव के चरणोदक का पान कर नित्य गुरुदेव के उच्छिष्ट भोजन अर्थात् गुरुप्रसादी का भोजन करना चाहिये। सदैव गुरु महाराज का ध्यान करना चाहिये और गुरुमन्त्र का जप करना चाहिये।

ये चाश्नन्ति गुरूच्छिष्टं भावेन भक्तितः सदा।
ते तु वाह्यान्तरः पूतास्तरन्ति भवसागरम्॥
अमररामायण सर्ग ५३

जो मनुष्य श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पूज्य गुरुदेव की प्रसादी

का भोजन करते हैं वे अन्दर और बाहर दोनों से पवित्र हो जाते हैं और दुस्तर भवसागर को तर जाते हैं।

प्रत्येक भक्त का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन भगवान्, अपने सम्प्रदायाचार्य और अपने गुरुदेव का प्रेम से आराधन और स्तोत्र पाठ और साष्टाङ्गदण्डवत् प्रणाम करे। यदि दूर हों तो उनके चित्र और मूर्तियों का शोडषोपचार से प्रतिदिन पूजन करे। उनके सामने उनके स्तोत्रों का पाठ करे और साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे।

भक्त को चाहिये कि भगवान् और गुरुदेव के समान ही भागवतों अर्थात् वैष्णवों में भी निष्ठा रखे। क्योंकि वैष्णव महानुभाव जगत् को पवित्र करनेवाले तीर्थों को भी पवित्र करने वाले हैं। श्री वै० म० भास्कर में भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि-

चापादिपञ्चायुधचिह्निताङ्कः
समीक्ष्य हृष्टश्च हरिप्रियानसौ।
तथाविधान् भक्तिपरः समर्चयेत्
सुवैष्णवाञ्जन्मफलादि संस्तुवन्॥

भगवान् के धनुर्बाणादि पञ्चायुधों से चिन्हित पुरुष तथाविध भगवत्प्रिय वैष्णवमहानुभावों को देखकर प्रसन्न होकर जन्म फल आदि की प्रशंसा करता हुआ भक्तिपरायण होकर उनकी पूजा करे।

पञ्चायुधाङ्का भुवि वैष्णवा ये
मुखाग्रजक्षत्रियवैश्यशूद्राः।

स्त्रियस्तथाऽन्येऽपि च विष्णुरूपा
जगत्पवित्रप्रपवित्रिणस्ते ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री तथा अन्य चाण्डालादि तथा पशु पक्षी आदि पृथिवी के समस्त प्राणी जो भगवान् के धनुर्बाणादि पञ्चायुधों से अङ्कित हैं वे विष्णुरूप हैं और जगत् को पवित्र करनेवाले तीर्थों को भी पवित्र करने वाले हैं।

ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा
देशे महाभागवता वसन्ति।
यत्रैव तद्दर्शनतत्स्थितिभ्यां
जातः सुपुण्यो निखिलाघशून्यः ॥

समस्ततीर्थमय देह धारण करनेवाले वे महाभागवत् जिसी देश में निवास करते हैं वही उनके दर्शन करने और उनके वहाँ निवास करने से पवित्र और सर्वपापों से रहित हो जाते हैं।

तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्
तत्सङ्गतेस्तत्प्रणतेर्विधानात् ॥
तद्भोजनानन्तरभोजनाच्च
स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः ॥

उन महाभागवतों के पूजन से, उनके चरणामृत का पान करने से, उनको प्रणाम करने से, उनके सत्संग करने से और उन्हें प्रथम भोजन कराकर पश्चात् भोजन करने से करोड़ों जन्म के उपार्जित पापों का नाश हो जाता है।

श्रीमद्भागवत में भी कहा है कि—

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥११-२-४७

और जो कोई भक्त भगवान् की मूर्ति में ही भगवान् की उपासना करता है, भगवद्‌भक्त सन्त महात्माओं तथा अन्य में भगवान् की भावना और आराधना नहीं करता है वह साधारण भक्त है उत्तम भक्त नहीं है।

श्रीनृसिंह भगवान् भक्तरत्न श्रीप्रह्लादजी से कहते हैं कि—

यत्र यत्र चमद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
साधवःस्समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥

( भा० ७-१०-१९ )

हे प्रह्लाद! शान्तिगुण युक्त सर्व में समानभाव देखनेवाले तथा सदाचारशील मेरे भक्त साधुलोग जिस जिस देश अथवा कुल में होते हैं वे निषिद्ध अथवा नीच हों तो भी पवित्र हो जाते हैं।

श्रीविष्णोर्वैष्णवानाञ्च पावनञ्चरणोदकम्।
सर्वतीर्थमयं पीत्वा कुर्यादाचमनं न हि ॥

( अगस्त्य संहिता )

श्रीविष्णु भगवान् और वष्णवों के सवतीथमय पवित्र चरणोंदक को पीकर आचमन नहीं करना चाहिये।

श्रीवैष्णवाङ्घ्रिसंस्पर्शादात्मनः शुद्धिमाचरेत्।

( वृहद्‌ब्रह्मसंहिता ३-७ )

वैष्णवों के चरणों के स्पर्श करने से अपने आत्मा की शुद्धि करे।

पद्म पुराण में कहा कि--

वैष्णवञ्जनमालोक्य नाभ्युत्थानं करोति यः।

प्रणयादरतो विप्र ? स नरो नरकातिथिः ॥

हे विप्र ! जो पुरुष वैष्णव महानुभावों को देखकर प्रेम से खडा नहीं हो जाता वह वैष्णवविमुख पुरुष मरने पर नरक का अतिथि हो जाता है अर्थात् नरक में पडता है।

यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम !।

करोति तस्य नश्यन्ति अर्थधर्मयशःसुताः ॥

दुर्लभं दर्शनं नूनं वैष्णवानां यथा हरेः। (ब्रह्मवैवर्त्त)

हे राजन ! जो पुरुष वैष्णव महानुभाव का उपहास करता है उसके धन धर्म यश और पुत्रआदि नष्ट हो जाते हैं। भगवान् के समान वैष्णवों के दर्शन भी दुर्लभ हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

**ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्भक्तिपरायणैः।**
**स्त्रिया सहैव कर्त्तव्यं सदा श्रीरामपूजनम् ३४**

पदच्छेदः-ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः शूद्रैः भक्तिपरायणैः स्त्रिया सह एव कर्त्तव्यम् सदा श्रीरामपूजनम्।

अन्वयः-भक्तिपरायणैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रिया सहैव श्रीरामपूजनं कर्त्तव्यम्।

शब्दार्थः-भक्तिपरायणैः = भक्ति में तत्पर। ब्राह्मणैः = ब्राह्मणों से। क्षत्रियैः = क्षत्रियों से। वैश्यैः = वैश्यों से। शूद्रैः = शूद्रों से। स्त्रियासह = स्त्री के साथ। एव = ही। श्रीरामपूजनम् = श्री

रामजी की पूजा । कर्त्तव्यम् = करना चाहिये ।

अर्थः-अपनी अपनी स्त्रियों के साथ ही भक्तिपरायण ब्राह्मणों क्षत्रियों वश्यों और शूद्रों को श्रीरामजी की पूजा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

**प्रतिवन्धो न विद्येत हरेराधने क्वचित् ।**
**सर्वपूज्यः सदा पूज्यो रामो भुवनपावनः ॥३५॥**

पदच्छेदः-प्रतिबन्धः न विद्येत हरेः आराधने क्वचित् सर्वपूज्यः रामः भुवनपावनः ।

अन्वयः--हरेराराधने क्वचित् प्रतिबन्धो न विद्येत । भुवनपावनो रामः सर्वपूज्यः सदा पूज्यः ( च ) ( अस्ति ) ।

शब्दार्थः-हरेः = भगवान् श्रीरामजी के । आराधने = पूजन में । क्वचित् = किसी भी देशकाल में । प्रतिबन्धः = बाधा । न = नहीं । विद्येत = है । भुवनपावनः = सम्पूर्ण भुवन को पवित्र करने वाले । रामः = भगवान् श्रीरामजी । सर्वपूज्यः = सब के द्वारा पूजा करने योग्य हैं । सर्वदा = सर्वदा । पूज्यः = पूजा करने योग्य हैं ।

अर्थः-भगवान् के आराधन में कहीं भी अर्थात् किसी भी देश और काल के लिये प्रतिबन्ध नहीं है । जगत् को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीरामजी सब से सर्वदा और सर्वत्र पूजने योग्य हैं ॥ ३५ ॥

**दीक्षितेन विशेषेण चोर्ध्वपुण्ड्रादिकं क्वचित् ॥३६**

## सूतके मृतके चापि न त्याज्यं रामपूजनम् ।

पदच्छेदः-सूतके मृतके च अपि त्याज्यम् रामपूजनम् दीक्षितेन विशेषेण मृतके च ऊर्ध्वपुण्ड्रादिकम् क्वचित् ।

अन्वयः-दीक्षितेन विशेषेण सूतके मृतके क्वचिदपि रामपूजनमूर्ध्वपुण्ड्रादिकञ्च न त्याज्यम् ।

शब्दार्थः-दीक्षितेन = श्रीराममन्त्र की दीक्षा ग्रहण किये हुये पुरुष को । विशेषेण = विशेष करके । सूतके = सूतक में । मृतके = किसी की मृत्यु होनेपर । क्वचित् = कहीं (किसी दशा में) अपि = भी । रामपूजनम् = भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का पूजन । च = और । ऊर्ध्वपुण्ड्रादिकम् = ऊर्ध्वपुण्डधारण आदि शुभकर्म । न = नहीं । त्याज्यम् = त्यागना चाहिये ।

अर्थः-श्रीराममन्त्र की दीक्षा से दीक्षित हुए मनुष्य को विशेष करके सूतक मृतक आदि किसी भी दशा में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आराधन और ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण इत्यादि कल्याणकारी वैष्णवधर्मों को त्यागना न चाहिये ।

विशेषविवेचन-उक्त कथन में निम्नलिखित प्रमाण है—

व्रतिनोमन्त्रपूतस्य साग्निकस्य द्विजस्य च ।
ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञाञ्च सूतकम् ॥

(गरुड़ पुराण अ० १३)

व्रतग्रहण किये हुए मनुष्यों को, दीक्षाप्राप्त वैष्णवों को अग्निहोत्रियों को, ब्रह्मनिष्ठ (भगवान्श्रीरामचन्द्रजी में निष्ठावाले) सन्यासाश्रमवाले त्रिदण्डियों को और राजाओं को सूतक नहीं

लगता है ॥३६॥

**आत्मरूपं सदाचिन्त्यं सच्चिदानन्दरूपिणम्।**
**सेवासुखप्रदं शश्वद्रामाधीनं निरामयम् ॥३७॥**

पदच्छेदः—आत्मरूपं सदाचिन्त्यम् सच्चिदानन्दरूपिणम्। सेवासुखप्रदम् शश्वद् रामाधीनम् निरामयम्।

अन्वयः—सच्चिदानन्दरूपिणं सेवासुखप्रदं शश्वद्रामाधीनं-निरामयमात्मरूपं सदा चिन्त्यम्।

शब्दार्थः—सच्चिदानन्दरूपिणम् = सत् चित् और आनन्द स्वरूप। सेवासुखप्रदम् = श्रीसीतारामजी की सेवा के सुख को देनेवाले। शश्वद् = निरन्तर। रामाधीनम् = भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के आधीन। निरामयम् = षड्विधविकारशून्य। आत्मरूपम् = जीव के स्वरूप को। सदा = सर्वदा। चिन्त्यम् = चिन्तन करना चाहिये।

अर्थः—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीसीतारामजी की सेवा के सुख को देने वाले निरन्तर (प्रत्येक दशा में अर्थात् संसारावस्था और मुक्ति दशा में भी) भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के पराधीन और उत्पत्ति नाशादि विकारों से रहित आत्मा के स्वरूप को सदैव चिन्तन करते रहना चाहिये ॥३७॥

**साकेतनायको रामो जगतः कारणं परम्।**
**क्रियाः सांसारिकाः सर्वास्तदधीना हि निश्चिताः**

पदच्छेदः—साकेतनायकः रामः जगतः कारणम् परम् क्रियाः

सांसारिकाः सर्वाः तदधीनाः हि निश्चिताः ।

अन्वयः-साकेतनायको रामो जगतः परं कारणं (अस्ति) सांसारिकाः सर्वाः क्रिया हि तदधीना निश्चिताः ।

शब्दार्थः-साकेतनायक,= श्रीसाकेतधाम के स्वामी । रामः= भगवान् श्रीरामचन्द्रजी । जगतः = जगत् के । परम् = सर्वसे पर अर्थात् मुख्य । कारणम् = कारण । (अस्ति = हैं) सांसारिकाः = संसार की । सर्वाः = समस्त । क्रियाः = क्रियायें । हि = निश्चय करके । तदधीनाः = उनके (भगवान् श्रीरामजी के) अधीन । निश्चिताः = निश्चित हैं ॥

अर्थः-साकेत धाम के स्वामी भगवान् श्रीरामजी ही समस्त जगत् के प्रधान कारण हैं । सम्पूर्ण प्रकार की सांसारिक क्रियामें (प्रवृत्तियां) निश्चय करके उन्हीं के अधीन हैं ॥३८॥

**देहान्ते चिन्मयं रूपं श्रीरामस्य परात्परम् ।**
**ध्यात्वा रसनया जल्पन् रामनामैव मोक्षदम् ३९**
**प्राकृतं देहमुत्सृज्य भित्वा भानोश्च मण्डलम् ।**
**गत्वा श्रीरामसान्निध्यंप्राप्नुयाद्धि कृतार्थताम् ।४०।**

पदच्छेदः-देहान्ते चिन्मयम् रूपम् श्रीरामस्य परात्परम् ध्यात्वा रसनया जल्पन् रामनाम एव मोक्षदम् प्राकृतं देहम् उत्सृज्य-भित्वा भानोः च मण्डलम् गत्वा श्रीरामसान्निध्यम् प्राप्नुयात् हि कृतार्थताम् ।

अन्वयः-देहान्ते श्रीरामस्य परात्परं चिन्मयंरूपं ध्यात्वा रसनया मोक्षदं रामनामैव जल्पन् प्राकृतं देहमुत्सृज्य भानोर्मण्डलंभित्त्वा च श्रीरामसान्निध्यंगत्वा कृतार्थतां प्राप्नुयाद्धि।

शब्दार्थः--देहान्ते = देहत्यागसमय में। श्रीरामस्य = भगवान् श्रीरामजीके। परात्परम् = परात्पर (परसेपर) चिन्मयम् = चिन्मय। रूपम् = स्वरूप को। ध्यात्वा = ध्यान करके। रसनया = जिह्वा से। मोक्षदम् = मोक्षदेनेवाले। रामनाम = श्रीरामनाम को (एव = हि। जल्पन् = रटता हुआ। प्राकृतं = प्रकृतितत्त्व से बने हुए। देहम् = देह को। उत्सृज्य = त्यागकर। च = और। भानोः = सूर्य भगवान् के। मण्डलम् = मण्डल को। भित्वा = भेदकर। श्रीरामसान्निध्यम् = भगवान् श्रीरामजी की सन्निधि समीपता को। गत्वा = प्राप्तहोकर। कृतार्थताम = कृतार्थता को। प्राप्नुयात् = प्राप्त हो। हि = निश्चय करके।

अर्थः--मनुष्य को चाहिये कि वह मृत्यु के समय में भगवान् श्रीरामजी के परात्परचिन्मय स्वरूप का ध्यान करके मोक्षप्रद श्रीरामनाम को जिह्वा से कीर्त्तन करता हुआ अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़े और सूर्यमण्डल भेदकर अर्थात् श्रीआनन्दभाष्य और श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर से कहे हुए अर्चिरादि मार्ग से भगवान् श्रीरामजी की सन्निधि को प्राप्त होकर उनके नित्य कैङ्कर्य द्वारा कृतकृत्य हो ॥ ३९॥४०॥

**मायातीते महादिव्ये साकेते रामवल्लभे।**
**नित्या स्थितिः सदा भाव्या स्वात्मनो योगिदुर्लभा ४१**

पदच्छेदः–मायातीते महादिव्ये साकेते रामवल्लभे नित्या स्थितः सदा भाव्या स्वात्मनः योगिदुर्लभा ।

अन्वयः–मायातीते महादिव्ये रामवल्लभे साकेते स्वात्मनो योगिदुर्लभा नित्यास्थितिः सदा भाव्या ।

शब्दार्थः–मायातीते = प्रकृतिमण्डल ( लीलाविभूति ) से पर। महादिव्ये = निरतिशय ( सबसे अधिक ) प्रकाशशाली अथवा दिव्य से दिव्य ( अत्यन्तदिव्य )। रामवल्लभे = भगवान् श्रीरामजी को अत्यन्त प्रिय। साकेते = सर्व से पर श्रीसाकेतधाम में। स्वात्मनः = अपने आत्मा की। योगिदुर्लभा = योगियों को दुर्लभ। नित्या = सर्वदा रहनेवाली। स्थितिः = स्थिति। सदा = सर्वदा। भाव्या = चिन्तन करना चाहिये।

अर्थः–प्रकृतिमंडल से पर महादिव्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त प्रिय श्रीसाकेतधाम में अपने आत्मा की योगिजनदुर्लभ नित्यस्थिति का सर्वदा चिन्तन करना चाहिये ॥४१॥

जनानां भ्रान्तमार्गाणामज्ञानध्वान्तशान्तये ।
श्रुतिशास्त्रगुहाविष्टतत्त्वरत्नप्रकाशकः ॥४२॥
सिद्धान्तदीपकश्चायमनन्तानन्ददीपितः ।
भूयाद्भक्तजनानन्ददायकस्तत्त्वदीप्तये ॥ ४२ ॥

इत्यमादिवैदिकश्रीसम्प्रदायप्रधानाचार्यानन्दभाष्यकार श्री १०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यमहाराजाचार्यसार्वभौमप्रधानशिष्य श्रीमदनन्तानन्दाचार्यमहाराजयतिसार्वभौमप्रणीतः सिद्धान्तदीपकः समाप्तः ॥

पदच्छेदः-जनानाम् भ्रान्तमार्गाणाम् अज्ञानध्वान्तशान्तये श्रुतिशास्त्रगुहाविष्टतत्त्वरत्नप्रकाशकः सिद्धान्तदीपकः च अयम्। अनन्तानन्ददीपितः भूयात् भक्तजनानन्ददायकः तत्त्वदीप्तये।

अन्वयः-भ्रान्तमार्गाणाञ्जनानामज्ञानध्वान्त शान्तयेऽनन्तानन्ददीपितः श्रुतिशास्त्रगुहाविष्टतत्त्वरत्नप्रकाशको भक्तजनानन्ददायकश्चायं सिद्धान्तदीपकस्तत्त्वदीप्तये भूयात्।

शब्दार्थः-भ्रान्तमार्गाणाम् = भ्रान्तमार्ग वाले। जनानाम् = मनुष्यों के अज्ञान-ध्वान्तशान्तये = अज्ञानान्धकार की शान्ति के लिये। अनन्तानन्ददीपितः = आचार्यचक्रवर्त्ती श्रीमदनन्तानन्दाचार्यजी महाराज के द्वारा दीपित (जलाया हुआ)। श्रुतिशास्त्रगुहाविष्टतत्त्वरत्नप्रकाशकः = वेद और शास्त्ररूपी गुफा में रहे-हुए तत्त्वरूपी रत्नों को प्रकाशित करने वाला। च = और। भक्तजनानन्ददायकः = भक्तजनों को आनन्द देनेवाला अयम् = यह सिद्धान्तदीपकः = सिद्धान्तदीपक। तत्त्वदीप्तये = तत्त्व के प्रकाश के लिये। भूयात् = हो।

अर्थः-भ्रान्तमार्गवाले मनुष्यों के अज्ञानान्धकार के नाशके लिये आचार्यसार्वभौम जगद्गुरुश्रीमदनन्तानन्दाचार्यजी महाराज यतिराज द्वारा प्रज्वलित किया हुआ वेद और शास्त्ररूपी गुफाओं में रहेहुए तत्त्व रूपी रत्नों को प्रकाशित करने वाला और भगवद्भक्त महानुभावों को आनन्द देनेवाला यह सिद्धान्तदीपक तत्वों को प्रकाशकरने के लिये हो ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीरामानन्दसम्प्रदायालङ्कार महान्तस्वामि श्रीरामशोभादासजी महाराज वैष्णवाचार्यप्रणीत सिद्धान्तदीपकस्य प्रभाख्या व्याख्या समाप्ता।